श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला ८

5.2

अलङ्कारप्रदीपः

पर्वतीय-विश्वेश्वरपण्डित-विरचितः

नेपालदेशीय-
विष्णुप्रसादभण्डारिणा
संशोधितः

सम्पादकोऽनुवादको भूमिकादिलेखकः
राष्ट्रपतिपुरस्कृतः
डॉ० महाप्रभुलालगोस्वामी



चौखम्भा संस्कृत संस्थान
भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता
पो० आ० चौखम्भा, पो० बाक्स नं० ११३९
जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी (भारत)



॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

८



अलङ्कारप्रदीपः

पर्वतीय-विश्वेश्वरपण्डित-विरचितः

नेपालदेशीय–

विष्णुप्रसादभण्डारिणा

संशोधितः

सम्पादकोऽनुवादको भूमिकादिलेखकः

राष्ट्रपतिपुरस्कृतः

डॉ० महाप्रभुलालगोस्वामी



चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पोस्ट बाक्स नं० ११३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
मुद्रक : श्रीगोकुल मुद्रणालय, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय वि० सं० २०४३ (प्रथम वार हिन्दी टीका सहित)
मूल्य : रु० ३५-००

फोन : ६५८८९

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्भा विश्वभारती
पोस्ट बाक्स नं० १०८४
चौक, (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : ५४७६६

THE

KASHI SANSKRIT SERIES

8

*****

ALANKĀRAPRADĪPA

OF

PARVATIYA VIŚVEŚVARA PANDIT

Edited by

VIŚNUPRASĀD BHANDĀRI OF NEPAL

Re-edited with Hindi Translation and Preface etc.

By

Dr. MAHAPRABHULĀL GOSWĀMI

(Awarded by President)

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN

Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature

P. O. Chaukhambha, Post Box No. 1139

Jadav Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane

.VARANASI (INDIA)

Phone : 65889

Second Edition : 1987

(First time with Hindi Commentary)

Price : Rs. 35-00

Also can be had of

CHAUKHAMBHA VISVABHARATI

Post Box No. 1084

Chowk (Opposite Chitra Cinema)

VARANASI-221001

Phone : 54766

Printers :—

SRIGOKUL MUDRANALAYA

Gopal Mandir Lane

Varanasi-221 001

प्रस्तावना

कुवलयानन्दादिसदृशः केवलार्थालङ्कारनिरूपकोऽयं प्रबन्धः। अस्य च कर्ता सर्वतन्त्रस्वतन्त्रपाण्डितीको नानानिबन्धकर्ता कूर्माचलदेशीयः पाण्डेयकुलभूषणो विश्वेश्वरावतारो विश्वेश्वरपण्डितः। अस्य समयादीतिवृत्तं मुद्रयिष्यमाणैतदीयनिबन्धान्तरे यथावसरं निवेशयिष्यत इति तत एवावगन्तव्यम्। अत्र च ग्रन्थकर्त्रा सरलैः सङ्क्षिप्तैः सूत्रभूतैर्वाक्यैरलङ्कारलक्षणानि तथा प्रतिपादितानि यथा सुकुमारमतयोऽपि क्लेशलेशं विनाऽलङ्कारतत्त्वमवबुद्धयेयुः। उदाहृतानि स्वकृतान्येव पद्यानि, अव्याप्त्यतिव्याप्तिबाध्यबाधकभावादिगहनः शास्त्रीयो विचारो न प्रचारित इति च विशेषः।

पत्र ( ) एतच्चिह्नमध्यपातिन्यः पङ्क्तय आदर्शपुस्तकेऽविद्यमाना अप्यपेक्षिता इति स्थापिताः।

आदर्शपुस्तकस्य नातिशुद्धस्यैकस्यैव लाभात्तदाधारेण मुद्रयितुमारब्धे सपरिश्रमं परिशोधितेऽप्यस्मिन् मानुष्यकनान्तरीयेषु स्खलितेषु भवन्तु क्षमाशीला ग्रन्थतत्त्वमात्रग्रहिलाः सहृदया इति।

निवेदयते

काशी — नेपालदेशीयो

३०–४–२३ — विष्णुप्रसादभण्डारी

आचार्य विश्वेश्वर

पर्वतीय विश्वेश्वर पण्डित का जन्म अल्मोड़ा से उत्तर दिशा की ओर पटिया नाम के ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम पण्डित लक्ष्मीधर पाण्डेय था। ये अनेक विद्याओं में पारङ्गत विद्याव्यवसाय एवं सत्कर्म में निरत रहते थे। दैवदुर्विपाक से इन्हें सन्तति नहीं थी। निरपत्यतादुःख से खिन्न द्विजाग्रणी अपनी पतिव्रता पत्नी के साथ शङ्कर से प्रतिष्ठित गङ्गातरङ्ग से परिपूत विविध कामना की पूर्तिदायिनी काशी में आकर मणिकर्णिका के समीप रहकर आशुतोष शीतांशुशेखर को सन्तुष्ट करने की अभिलाषा से पार्थिवलिङ्ग की अभ्यर्चना करते हुए कोटिलिङ्ग की अर्चना सम्पन्न की। किसी दिन गत-प्राय-रात्रि होने पर निद्रामुद्रित नेत्र-लक्ष्मीधर ने स्वप्न में वृष पर आरूढ़ प्रसन्नवदना गिरिजा के साथ विश्वनाथ ने समीप आकर कहा, वत्स ! तुमको पुत्र होगा, यह वरदान प्राप्त कर पत्नी को परमानन्द पूर्वक सूचित किया। सातवें मास में ही शुभमुहूर्त में पुत्ररत्न का जन्म हुआ। पञ्चम वर्ष में यज्ञोपवीत होने के बाद आचार्य विश्वेश्वर विधिपूर्वक अध्ययन करते हुए कुछ ही काल में सभी विद्याओं में विलक्षण विपक्ष प्रतिभा के धनी हो गये। व्याकरण, न्याय, साहित्य आदि शास्त्रों में प्रगाढ़ पाण्डित्य की प्राप्ति की।

इनके रचित ग्रन्थः—

(१) व्याकरणसिद्धान्त-सुधानिधि
(२) तर्ककौतूहल
(३) अलङ्कारकौस्तुभ
(४) अलङ्कारप्रदीप
(५) अलङ्कारमुक्तावली
(६) नैषधभावप्रकाशिका
(७) रसचन्द्रिका
(८) मन्दारमञ्जरी (गद्यकाव्य)
(९) रुक्मिणीपरिणय
(१०) आर्यासप्तशती आदि।

१. 'श्रीलक्ष्मीधर विबुधावतंसचरणाब्जरेणुकणः' रसचन्द्रिका श्लो. सं. २

अलङ्कार-कौस्तुभ के अनेक स्थलों में रसगङ्गाधर प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ की चर्चा मिलने से इनका समय सत्रहवीं शती के शेष में या १८वीं शती के प्रारम्भ में मानना उचित है।

अलङ्कारशास्त्रः—

अलङ्कार की प्राचीनता पर दृष्टिपात करने से इसको वेद का समानकालीन या अपौरुषेय ही मानना पड़ेगा। ऋक्संहिता के ऋषि वसिष्ठ ने

इन्द्र से जिज्ञासा की है—काले अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः—हे इन्द्र सूक्तों में ऐसी कौन सी अलंकृति है, कौन सी सारवत्ता है, कौन सी आपूर्ति है, कौन सी उपलब्धि है। इस जिज्ञासा से अलङ्कार के विषय में जिज्ञासा ही अवगत होती है। र और ल में अभेद होने से 'अलम्' की उक्ति वेद में 'अरम्' शब्द से की गई है। यह गत्यर्थक ऋ धातु से निष्पन्न हुआ है। गति का ज्ञान, प्राप्ति आदि अनेक अर्थ होते हैं। अनन्तर उपमा शब्द से अलङ्कार का निर्देश या एक के निरुक्त में गार्ग्य का मत उद्धृत करते हुए उपलब्ध होता है।

आचार्य पाणिनि आदि वैयाकरणों के समय से उपमा का अलङ्कार के रूप में विश्लेषण स्पष्ट रूप में मिलता है। इस प्रकार अलङ्कार का सूक्ष्म-निर्देश वैदिक काल से ही उपलब्ध है जिसका विवरण आचार्यों के ग्रन्थों में मिलता है।

संस्कृत साहित्य और अलंकार

भारतीय काव्यशास्त्र का प्रारम्भ कब हुआ यह अत्यन्त विवादास्पद प्रश्न है किन्तु, अन्य शास्त्रों की भाँति काव्य का भी मूलाधार वेद ही है। साहित्य के चारुत्वाधान की सभी सामग्रियों का प्रयोग वेद की ऋचाओं में ही उपलब्ध हो जाता है। अतः, लौकिक साहित्य का आदि काव्य रामायण है और मूल एवं अनादि काव्य वेद ही है। इसी दृष्टि से साहित्यशास्त्र के मूल सिद्धान्तों का वेदों में अन्वेषण करने का यत्न किया गया है। साक्षात् साहित्यशास्त्र का वेदों से साक्षात् कोई सम्वन्ध नहीं है। वेदांगों में भी शिक्षा, कल्प व्याकरण निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन ६ विद्याओं की गणना की गई है, पर उनमें साहित्य का नाम नहीं आता। इसलिए वेद और वेदांगों से साहित्यशास्त्र का साक्षात् सम्बन्ध नहीं है फिर भी वेद को 'देव का अमर काव्य' कहा गया है—'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' इस वैदिक बचन में 'देव के काव्य' के रूप में वेद का ही निर्देश किया गया है और वेद के निर्माता परमात्मा के लिए वेदों में अनेक जगह 'कवि' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसलिए वेद स्वयं काव्य रूप है और उसमें काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य पाया जाता है। फलतः वेद काव्यशास्त्र का लक्ष्य ही है। इसलिए काव्यसौन्दर्य के निरूपक साहित्यशास्त्र में काव्यसौन्दर्य के आधायक जिन गुण, रीति, अलंकार, ध्वनि आदि तत्त्वों का विवेचन किया गया है ये सभी तत्त्व मूलरूप में वेद में पाये जाते हैं।

अलंकार के लिए ऋग्वेद में 'अरंकृत', 'अरंकृति' एवं अरंकृत् शब्दों का प्रयोग मिलता है। उपमा और रूपक आदि अलंकारों की तो वेदों में भरमार है। एक-एक मन्त्र में अनेक जगह रूपक और उपमा आदि का प्रयोग देखा जा सकता है—

'उतत्वः पश्यन् न ददर्श वाचं उतत्वः शृण्वन् न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्यै उषती सुवासा ॥'

इस ऋचा के उत्तरार्ध में उपमा अलंकार का भी चमत्कार पाया जाता है। अनेक लोग विद्या पढ़ते हैं पर उसका रहस्य खुलता नहीं, अनेक लोग महत्त्व की बातें सुनते हैं पर उनका भाव समझ में नहीं आता। ऐसे ही लोगों को तथ्य में रखकर मन्त्र में कहा गया है 'उतत्वः पश्यन् न ददर्श वाच'। 'त्व' अर्थात् कुछ लोग ऐसे हैं जो देखते हुए भी बाणी के स्वरूप को नहीं देख पाते हैं और 'श्रृण्वन् अपि न श्रृणोत्येनां' सुनकर भी उसको सुन नहीं पाते हैं। ये दोनों विरोधाभास के कितने सुन्दर उदाहरण हैं। तीसरे वे लोग हैं जिनके सामने वाणी अपना सारा सौन्दर्य इस प्रकार खोल देती है जिस प्रकार सुन्दरतम वेशभूषा में अलंकृत होकर पत्नी अपने पति के सामने अपने सौन्दर्य को पूर्णरूप में प्रदर्शित करती है। उतो त्व स्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उषती सुवासा' इस उपमा का पूर्व प्रदर्शित ही भाव है। वह कितनी सुन्दर उपमा है। इसके व्यतिरिक्त बहुत से अलंकारों के उदाहरण ऋग्वेद की ऋचाओं में मिलते हैं।

उपनिषदों में भी कुछ अर्थालंकारों के उदाहरण मिलते हैं। निम्नलिखित मंत्रों में रूपक अलंकार पाया जाता है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
धनुर्गृहीत्वौषनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि ॥

पाणिनि के (५०० ई० पू०) समय में उपमा की यही शास्त्रीय कल्पना सर्वत्र स्वीकृत की गयी थी। इसीलिए पाणिनि की अष्टाध्यायी में उपमा, उपमान, उपमित तथा सामान्य बचन जैसे अलंकार शास्त्र के पारिभाषिक शब्दप्रयुक्त किये गये हैं। पूर्ण उपमा के चार अंग होते हैं—उपमान, उपमेय सादृश्यवाचक तथा साधारण धर्म। इन चारों का स्पष्ट निर्देश पाणिनि ने अपने व्याकरण शास्त्र में किया है। पतञ्जलि ने पाणिनि के द्वारा प्रयुक्त 'उपमान' शब्द की व्याख्या महाभाष्य में (२।१।५५) की है। उनका कहना है कि उपमान वह वस्तु है जो किसी अज्ञात वस्तु के निर्धारण के लिए

प्रयुक्त की जाती है। 'उपमान' मान के समान होता है और वह किसी वस्तु का अत्यन्त रूप से नहीं, प्रत्युत सामान्य रूप से निर्देश करता है, जैसे-'गौरिव गवयः' अर्थात् गाय के समान नीलगाय होती है।

इसके अतिरिक्त बादरायण के वेदान्तसूत्रों में उपमा और रूपक शब्दों की परिभाषा मिलती है। अप्पयदीक्षित ने चित्रमीमांसा में कहा है कि बादरायण ने शारीरकसूत्र में रूपक अलंकार स्वीकार किया है।

रामायण के रचयिता महर्षि बाल्मीकि संपूर्ण साहित्य के आदिकबि ही नहीं वरन् आदिम आलोचक भी थे। व्याध के वाण से विधे हुए क्रौंच के लिए विलाप करती हुई क्रौंची के क्रन्दन को सुनकर जिन बाल्मीकि के मुंह से यह श्लोक निकला—

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।
इसे कोई सच्चा कबि ही कह सकता है।

इतिहासतत्त्ववेत्ता के आधार पर प्रथम महाकाव्य के रचयिता महर्षि पाणिनि है। इनका 'जाम्ववती परिणय' नामक महाकाव्य है। पतञ्जलि ने बररुचि के द्वारा निर्मित 'बाररुचं काव्यम्' का उल्लेख अपने भाष्य में किया है। बौद्ध कवि अश्वघोष ने 'सौन्दरनन्द' और 'बुद्धचरित' दो महाकाव्यों में अनुप्रास, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा इत्यादि अनेक अलंकारों की रमणीय योजना पाई जाती है। उत्प्रेक्षा अलंकार का एक उदाहरण निम्न-प्रकार है—

'इमाश्च विक्षिप्तविटंकबाहवः प्रसक्तपारावतदीर्घनिःस्वनाः।
विनाकृतास्तेन सहावरोघनैर्भृशं रुदन्तीव विमानपंक्तयः ।।'

इस उदाहरण में उत्प्रेक्षा अलंकार के साथ-साथ 'विक्षिप्तविटंकबाहवः' तथा 'प्रसक्तवारावतदीर्घनिःस्पनाः' में रूपकालंकार भी है। 'अवरोघनैः सह' के प्रयोग में सहोक्ति की भी छटा दिखाई पड़ती है। 'रुदन्तीव' में स्पष्टतः वस्तूत्प्रेक्षा है।

अश्वघोष तथा कालिदास के काव्यों के बीच में कुछ शिलालेख मिले हैं। इस युग के कबियों में हरिषेण तथा वत्समट्टि का नाम उल्लेख योग्य है। हरिषेण ने ३५० ई० के आसपास समुद्रगुप्त के दिग्विजय का वर्णन गद्य-पद्य मिश्रित भाषा में किया है। परन्तु इससे दो सौ वर्ष पहले ७२ शकसंवत् (१५० ई०) में निबद्ध रुद्रदामन का गिरनार पर्वत पर लिखित शिलालेख

भाषा के सौन्दर्य तथा प्रवाह के कारण गद्य-काव्य का आनन्द देता है। रुद्रदामन् के शिलालेख में हमें यमक की छटा मिलती है तथा लेखक ने अलंकृत गद्य-पद्य का संकेत किया है :—

सर्वक्षत्राविष्कृतवीरशब्दजातोत्सेकाविधेयानां यौधेयानां प्रसह्योत्सादेन··· ···शब्दार्थगांधर्वन्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां पारणधारणविज्ञानप्रयोगावाप्त-विपुलकीर्तिना······ स्फुटमधुरचित्रकान्तसमयोदारलङ्कृतगद्यपद्य······ मधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्रदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना ······।

(रुद्रदामन् का गिरनार शिलालेख)।

इस गद्य खण्ड के द्वारा यह प्रमाणित होता है कि ईसा की दूसरी शती तक काव्य के दो भेद गद्य एवं पद्य के रूप में मान्य हो चुके थे और अलंकारों तथा गुणों का भी निरूपण हो चुका था।

अलंकार का लक्षण

अलंकारशब्द 'अलम्' और 'कार' दो शब्दों से बना है। 'अलम्' शब्द ऋक्संहिता में 'अरम्' के रूप में मिलता है। अलंकार पद की व्युत्पत्तियां तीन तरह से दी जाती है—अलंकरोतीति, अलंक्रियते अनेन इति, अलंकृतिः अलंकरणं वा अलंकारः। एस० एन० दास गुप्ता ने अलंकार पद को ग्रीक ऑरुम शब्द से व्युत्पन्न माना है। जिसका अर्थ सुवर्ण होता है। इस प्रकार अलंकार पद का शब्दार्थ सुवर्णीकरण है। जिससे अंग की तथा उसके द्वारा अंगी की शोभावृद्धि होती है उसे अलंकार कहते हैं। जिस प्रकार लोक में कटक, कुण्डल आदि अलंकारों के द्वारा कामिनी के शरीर विभूषित होता है उसी प्रकार कविता रूप कामिनी का सौन्दर्य उपमादि अलंकारों के द्वारा बढ़ जाता है। काव्य के शरीरभूत धर्म हैं शब्द और धर्म। अलंकारों के द्वारा शब्द और अर्थ की शोभावृद्धि होती है। इस प्रसंग में आचार्य अभिनवगुप्त का कथन अतिशय तल स्पर्शी है। यद्यपि उपमा इत्यादि के द्वारा वाच्यार्थ ही अलंकृत किया जाता है तथापि रस को उसके वाच्यार्थ को अलंकृत करने का यही अर्थ है कि वह वाच्यार्थ में व्यंग्यार्थ के अभिव्यक्त करने की शक्ति का आधान कर देता है। इस प्रकार वस्तुतः अलंकार्य ध्वन्यात्मक रस इत्यादि ही होते हैं। लोक में कटक, कुण्डल इत्यादि आभूषण होते हैं। उनका समवाय-सम्बन्ध शरीर से ही होता है। (अर्थात् शरीर को आभूषित करने

के कारण ही आभूषणों को आभूषण कहा जाता है। समवाय सम्बन्ध का अर्थ है नित्यसम्बन्ध। यहाँ पर 'आभूषणों का शरीर से समवाय सम्बन्ध होता है' यह वाक्य कहा गया है। इसका आशय आभूषणों का शरीर पर नित्य धारण किया जाना नहीं है अपितु उसका अर्थ यह है कि आभूषणों में आभूषणत्व धर्म का प्रयोजक यही तत्त्व है कि आभूषण शरीर को आभूषित करते हैं।) इन लौकिक आभूषणों के द्वारा चेतन आत्मा ही अलंकृत की जाती है क्योंकि आभूषण विशेष प्रकार की चित्तवृत्तियों के औचित्य को सूचित करते हैं। (नवयुवक के शरीर पर धारण किये हुए कटक कुण्डल इत्यादि उस युवक की रागात्मक चित्तवृत्ति को सूचित करते हैं। इसी प्रकार सन्यासी के शरीर पर धारण किये हुए काषाय वस्त्र, दण्ड इत्यादि उसकी वैराग्यमयी चित्तवृत्ति के द्योतक होते हैं।) वह इस प्रकार समझिये-यदि कुण्डल इत्यादि किसी शव के शरीर पर सजाये जावें तो भी उनकी शोभा नहीं होती, क्योंकि उसमें अलंकार्य चेतना तो है ही नहीं। इसी प्रकार यदि किसी सन्यासी के शरीर पर कटक इत्यादि सजा दिया जाय तो वह एक उपहास की वस्तु ही हो जायेगी क्योंकि वहाँ पर अलंकार्य अनुचित है। शरीर तो सब के एक से ही होते हैं उनके लिए कोई चीज उचित या अनुचित नहीं होती। अर्था[जो आभूषण एक शरीर को आभूषित कर सकते हैं वे किसी भी दूसरे शरीर को आभूषित कर सकते हैं, उनके लिए कोई वस्तु उचित या अनुचित नहीं कही जा सकती है। वस्तुतः अलंकार्य तो आत्मा ही होता है। क्योंकि लोग कहा ही करते हैं कि 'मैं अलंकृत हो गया'। 'मैं' शब्द का प्रयोग तो आत्मा के लिए ही होता है। आशय यह है कि कटक इत्यादि आभूषण रागित्व के औचित्य को प्रकट करते हैं। यति की आत्मा का रागी होना अनुचित है। अतएव यति के शरीर पर विद्यमान कटक कुण्डल इत्यादि हास्यावह होते हैं। इससे निष्कर्ष यह निकला कि विभिन्न शरीरों में विद्यमान कटक कुण्डल इत्यादि के द्वारा रागित्व इत्यादि विशेष प्रकार की चित्तवृत्ति की सूचना मिलती है। यदि वह चित्तवृत्ति उस आत्मा के अनुकूल हो तो धारण किया हुआ अलंकार वास्तविक अलंकार का काम देता है। अन्यथा हास्यावह हो जाता है। यह तो लौकिक प्रमाण हुआ। इसके अतिरिक्त लोक में व्यवहृत शब्द भी प्रमाण है। लोग कहा ही करते हैं कि मैं अलंकृत हो गया। यहाँ पर मैं का अर्थ है चेतन या आत्मा। इस प्रकार लोक में शरीर को अलंकृत कर अलंकार वस्तुतः आत्मा के ही अलंकारक होते हैं। उसी प्रकार काव्य में अलंकार शब्द तथा वाच्यार्थ रूप काव्यशरीर को अलंकृत करते हुए रस रूप व्याख्या आत्मा के ही अलंकृत करने वाले

होते हैं। भामह आदि आचार्यों ने अलंकार को ही मुख्यतम स्थान दिया है। रस आदि की स्थिति भी अलंकार के रूप में ही की है। किन्तु यह तो इनको भी मान्य है कि अलंकारों के उचित सन्निवेश से ही अलंकार में अलंकारत्व रहता है यही कारण है कि परवर्ती आचार्यों ने अलंकार्य के विवेचन में अधिक दृष्टि दी तथा ध्वनि आदि की स्थापना की ओर सचेष्ट हुए। अलंकार में अलंकारत्व साधन के लिए वह उक्ति की ओर भामह का संकेत ही बक्रोक्ति के अलंकार्यत्व के जन्म का मूलाधार होता है। इस तरह सामान्य अर्थ या सामान्य शब्द को तो काव्य का अंगी भामह ने भी नही माना है वरन् बक्रता विशिष्ट को ही काव्य का अंगी माना है।

फलतः आगे के आचार्यों के ध्वनि आदि के अलंकार्यत्व के विश्लेषण का आधार यही ग्रन्थ है, अतः आचार्य आनन्दवर्धन आदि के भामह और उद्भट का उद्धरण अपने ग्रन्थ में आदरपूर्वक दिया है।

भामह का अलंकार-निरूपण पर्याप्त व्यापक और महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार वामन ने रीति को आनन्दवर्धन ने ध्वनि को या विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा ही कहा और अलंकार का स्पष्ट लक्षण भी नहीं किया। फिर भी उनको अलंकारवादी कहा जाता है। उन्होंने अलंकार को काव्य-शोभा का आधायक तत्त्व बताया। इनके अनुसार स्वाभाविक सुन्दर होने पर भी वनिता का मुख अलंकार के बिना विभूषित नहीं होता उसी प्रकार काव्य में सौन्दर्य के आधायक रस, गुण आदि तत्त्वों के रहने पर भी अलंकार के बिना वह पूर्ण चमत्कार को प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार थे भी अलंकार को काव्य का अनिवार्य धर्म सिद्ध कर देते हैं। भामह काव्य को अकाव्य से पृथक् करने के लिए कहते हैं कि उसमें अलंकार हो। यही कारण है कि भामह ने काव्य में लोकातिक्रान्तगोचरता आवश्यक मानी है। इसी के द्वारा काव्य में चारुता आती है। भामह के 'सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिः' इस कथन का अर्थ करते हुए कहा है कि प्रायः सभी ने अतिशयोक्ति को वक्रोक्ति का पर्याय बताया है। भामह ने वक्रोक्ति (अतिशयोक्ति) को ही काव्य के लिए अनिवार्य तत्त्व माना है, अलंकार को नहीं। वक्रोक्ति और अलंकार दो वस्तुएँ हैं, वक्रोक्ति ही अलंकार का मूलाधार है। उसके बिना चमत्कार आ ही नहीं सकता तथा उसी को सम्पूर्ण अलंकारों की जीवितभूत मानते हैं।

भामह ने वक्रोक्तिहीन अलंकारों को अलंकार नहीं स्वीकार किया है। इसी आधार पर ये हेतु, सूक्ष्म तथा लेश नामक अलंकारों को अलंकार नहीं

मानते हैं। इनके अनुसार अलंकार मूल तत्त्व अतिशयोक्ति है और अतिशयोक्ति का अर्थ है लोकातिक्रान्तगोचर वचन।

दण्डी भी भामह के इस कथन से सहमत हैं। उनका कथत है कि बृहस्पति द्वारा प्रशंसित यह अतिशयोक्ति अन्य अलंकारों में भी प्रधान और सर्वश्रेष्ठ आधार है।

इसका तात्पर्य यह है कि शब्दार्थ वैचित्र्य ही अलंकार है, वह वैचित्र्य अतिशयोक्ति के अधीन है, अतः सभी अलंकारों में सामान्यतः अतिशयोक्ति रहती है, परन्तु तत्तद्वैचित्र्यविशेष के कारण भिन्न-भिन्न नाम से व्यवहार होता है। जहाँ पर दूसरे प्रकार की विचित्रता नहीं रहती है वहाँ अतिशयोक्ति होती है।

आनन्दवर्धन ने भी भामह की दृष्टि से अतिशयोक्ति की उपादेयता स्वीकार की है उनके अनुसार पहले तो सभी अलंकारों की अतिशयोक्ति गर्भता सम्भव है। महाकवियों के द्वारा प्रयुक्त होकर ही वह अवर्णनीय काव्य-शोभा को पुष्ट करती है। परन्तु कुन्तक इन सबसे विलक्षण है। ये इसे अलङ्कार न मानकर काव्य का मूलतत्त्व मानते हैं उनकी वक्रोक्ति का लक्षण है—'वैदग्धी भङ्गमणितिः' अर्थात् किसी वस्तु का साधारणलौकिक प्रकार से भिन्न, अलौकिक ढंग से कथन। वक्रोक्ति और कुछ नहीं शास्त्र या लोक-प्रसिद्ध कथन या उक्ति से अतिशय सुन्दर विचित्र उक्ति ही है। काव्यकौशल को वक्रोक्ति कहते हैं जो प्रसिद्ध अर्थ के अतिरिक्त भिन्न अर्थ को घोषित करे। सारांश यह है कि उनकी वक्रता 'काव्यसौन्दर्य' या 'कविकौशल' का द्योतक है। काव्य का जो कुछ भी चमत्कार या सुन्दर है, वही वक्रोक्ति है।

काव्यप्रकाश के दशमउल्लास में 'विशेष' अलङ्कार की चर्चा करते हुए मम्मट ने अतिशयोक्ति' को काव्य का प्राण कहा है।

दण्डी को भी अलङ्कार सम्प्रदाय का ही आचार्य मानना उपयुक्त होगा। अलङ्कार की मान्य परिभाषा आचार्य दण्डी ने दी है जिसके अनुसार-काव्य की शोभा को समृद्ध करने वाले धर्मों को अलङ्कार कहते हैं।

दण्डी ने नाटक के तत्त्वों को भी अलङ्कार ही मानकर अलङ्कार के स्वरूप को विस्तृत कर दिया है। दूसरे शास्त्र में जो सन्धि, सन्ध्यंग, वृत्ति, वृत्त्यंग, लक्षण आदि सविस्तर वर्णित हैं उन्हें भी हम अलङ्कार ही मानते हैं।

वामन ने अलङ्कारों के शब्द और अर्थ उभयविध आश्रय को स्वीकार किया हैं पर उन्हें काव्य की शोभा के स्वरूप का आधायक न मानकर उसके अतिशय का आधायक मानते हैं। काव्य की शोभा को उत्पन्न करनेवाले गुण

कहलाते हैं। गुणों के होने पर ही अलङ्कार काव्य की शोभा की वृद्धि कर सकते हैं। अतः अलङ्कार काव्य शोभा के स्वरूपाधायक न होकर उत्कर्षाधायक हैं। गुणों के लिए ही हम अलङ्कार शब्द का प्रयोग कर सकते हैं (इस प्रकार गुण काव्य की शोभा के आधायक उपादान कारण है तो अलङ्कार निमित्तकारण है। उपादानों को ही दृष्टि में रखकर अलङ्कार को काव्य का सौन्दर्य घोषित किया है।

आचार्य रुद्रट भी कविप्रतिभा से उद्भूत कथन-विशेष को ही अलङ्कार मानते हैं। ध्वनिकार वाणी की अनन्त शैलियों को अलङ्कार मानते हुए उसकी संख्या अनन्त स्वीकार करते हैं।

आनन्दवर्धन ने काव्य और अलङ्कार में अंगी और अंग का सम्बन्ध माना है। उनका कहना है कि अलङ्कार काव्य में कभी अंगी के रूप में उपस्थित नहीं हो सकते हैं। अंगी रस ध्वनि ही हो सकती है। इसीलिए काव्य में अलङ्कार के लिए अलग से प्रयास नहीं करना चाहिए। अलङ्कार तो वही है जो स्वाभाविक रूप से रसादि के निवन्ध के साथ ही बिना किसी प्रयास के रस से आक्षिप्त होकर स्वतः उपनिवद्ध हो जाय। ध्वनिकार ने तो काव्य के सभी अलंकारों की अप्रधानता की सिद्धि के लिए एक विधान किया है जिसमें पाँच नियम होते हैं—अलङ्कारों की विवक्षा सदैव रस को प्रधान मानकर हो, उनका विनिवेश प्रधान रूप से किसी भी दशा में नहीं हो, उचित काल पर उसका ग्रहण और त्याग होना चाहिए, आदि से अन्त तक अलङ्कार का अत्यन्त निर्वाह की इच्छा नहीं करनी चाहिए। यदि कहीं अनायास आद्यन्त निर्वाह हो जाय तो निर्वाह हो जाने पर भी वह अङ्गरूप में ही हो यह बात सावधानी से फिर देख लेनी चाहिए।

महिमभट्ट ने अलङ्कारों के (विषय में आचार्य आनन्दवर्धन से सहमत है। उनका कहना है कि काव्यरचना में कबि की प्रवृत्ति विवेच्य वस्तु में सौन्दर्य अतिरेक के आधान करने के लिए होती है न कि अलङ्कारों का प्रदर्शन करने के लिए। ये तो उसमें स्वतः निष्पन्न हो जाते हैं क्योंकि किसी वस्तु की भंगिमा को लिए हुए अनेक प्रकार की अभिव्यक्ति ही तो अलङ्कार है। इस प्रकार महिमभट्ट के अनुसार अलङ्कारत्व काव्य के विवेच्य-विषय में न होकर उसके कहने के प्रकार में है।

भोज ने कटक-कुण्डलादि की भाँति अलङ्कारों को काव्य का बाह्य सौन्दर्य ही नहीं माना है। उन्होंने शरीर के ऊपर स्थित रहने वाले कटकादि की उपमा को अलङ्कारों के लिए अपर्याप्त माना है।

मम्मट ध्वनिकार आनन्दवर्धन के अनुयायी हैं। इन्होंने भी काव्य में अलङ्कारों की स्थिति को अनिवार्य न मानते हुए अलङ्कार का लक्षण किया है—जैसे हार आदि आभूषण कण्ठ आदि अङ्ग के सौन्दर्यवर्धक हुआ करते हैं, उसी तरह उपमा आदि अलङ्कार शब्द और अर्थरूप अङ्ग के सौन्दर्यवर्धक हुआ करते हैं।

अलङ्कारों के विवेचन के लिए मम्मट के बाद रुय्यक तथा जयदेव विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। ये दोनों ही महिमभट्ट से प्रभावित हैं। रुय्यक ने अपने 'अलङ्कार सर्वस्व' में अलङ्कार सामान्य का विशेष लक्षण न कहकर अलङ्कारत्व को अभिधान का एक प्रकार माना है।

जयदेव ने अपनी कृति 'चन्द्रालोक' के आरम्भ में अलंकार की स्थिति को गौण कर देने पर अपना क्षोभ व्यक्त किया है। उनका कहना है कि जिस प्रकार उष्णता से विहीन अग्नि की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार अलङ्कार से विहीन काव्य कथमपि सम्भव नहीं।

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार अलङ्कार व्यंग्य को रमणीय बनाने वाले होते हैं।

सम्प्रति भरत का 'नाट्यशास्त्र' ही भारतीय काव्य शास्त्र का आद्यग्रन्थ उपलब्ध है जिसका समय ई० पू० दो सौ वर्ष के आस पास माना गया है। स्वयं भरत ने अपने ग्रन्थ में आनुवंश्य श्लोकों के क्रम में पूर्ववर्ती आचार्यों के द्वारा वर्णित रसादि की चर्चा की है। भामह ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार' में मेधावी रुद्र आदि आचार्यों के नाम का उल्लेख किया है तथा दण्डिविरचित 'काव्यादर्श' की हृदयंगमा टीका में काश्यप एवं वररुचि नामक आचार्यों का नाम है जो दण्डी के पूर्ववर्ती थे। अन्य ग्रन्थों में आदिभरत, नन्दिस्वामी, ब्रह्मदत्त, दत्तिल एवं नन्दिकेश्वर के नाम हैं। इन सभी नामों एवं उपलब्ध उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि भरत से पूर्व भारतीय काव्यशास्त्र का उदय हो चुका था एवं साथ ही नाट्यशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र विषयक अनेक ग्रन्थों की भी रचना हुई थीं पर उन ग्रन्थों की अनुपलब्धि होने के कारण भरत को ही काव्यशास्त्र का आदि आचार्य माना जाता है। काव्य में सर्वप्रथम अलङ्कारों का संकेत हमें भरत के नाट्यशास्त्र में उपलब्ध होता है। भरत ने रूपकों की भाषा शैली पर प्रकाश डालते समय चार अलङ्कारों का संकेत किया है—उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक।

इसके पश्चात् अग्निपुराण में सोलह अलङ्कारों के नाम दिये हैं। अग्निपुराण के समय के सम्बन्ध में कड़ा सन्देह, कुछ लोग पुराण-शब्द प्रथा के

आधार पर उसे प्राचीनतम और कुछ लोग अन्तरंग परीक्षा के आधार पर अनतिप्राचीन मानते हैं, अतः उसमें लिखे गये अलङ्कारों का कौन क्रम होगा- यह भी सन्दिग्ध है।

वास्तव में अग्निपुराण तक का अलंकारविभाग प्रामाणिक रूप में नहीं है। अग्निपुराण के बाद अलङ्कारग्रन्थ में भामह का 'काव्यालङ्कार' है। ये अलङ्कार-सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य हैं। भामह के पूर्व भी कतिपय आलङ्कारिक हो चुके होगें और इसीलिए भामह ने 'काव्यालङ्कार' में आये हुए अलङ्कारों को कतिपय वर्गों में वर्णन कर 'अन्ये', 'केचित्', 'परे' शब्दों का प्रयोग किया है। भामह द्वार वर्णित अलङ्कारों की संख्या ३८ है। भरत निर्दिष्ट चार अलङ्कारों की तुलना में यह ३८ की संख्या निश्चित ही प्रगति की सूचक है। इन अलङ्कारों में कितने पूर्व आचार्य लिखे गये हैं और कितने भामह द्वारा उद्‌भाषित हैं, इसका संकेत ग्रन्थ में नहीं मिलता हैं। उदाहरणों के सम्बन्ध में उनका कहना है कि-अपने द्वारा रचे हुए उदाहरणों से ही मैंने इन अलङ्कारों का निरूपण किया है।

सर्वप्रथम भामह ने अलङ्कारों के समूहों का निर्देश किया है। पहले समूह में अनुप्रास यमक, रूपक, दीपक और उपमा ये पाँच अलङ्कार लिखे हैं। दूसरे समूह में आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना समासोक्ति और अतिशयोक्ति ये ६ अलङ्कार लिखे हैं।

हेतु, सूक्ष्म और लेश का नाम निर्देश करते हुए भी भामह ने उनको अलङ्कार नहीं माना।

तदनन्तर उनमें यथासंख्य और उत्प्रेक्षा दोनों को एक समूह में लिखकर स्वभावोक्ति को भी कुछ लोगों के मत में अलङ्कार लिखा है। संभव है इन अलङ्कारों को मानने वालों के हिसाब से ये भी दूसरे ही समूह में हो।

तीसरे समूह में प्रेय, रसवत् ऊर्जस्वित्, पर्यायोक्त, समाहित, द्विविध उदात्त, त्रिविध श्लेष, अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुत-प्रशंसा व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमा-रूपक, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति, ससन्देह, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव, संसृष्टि, भाविकत्व और आशीः ये अलङ्कार गिने गये हैं।

इनमें दो शब्दालङ्कार (अनुप्रास, यमक) और छत्तीस अर्थालङ्कार हैं।

आचार्य दण्डी ने इनमें कुछ घटा-बढ़ाकर निम्नलिखित अलङ्कार स्वीकार किये हैं।

स्वभावोक्ति, उपमा, रूपक, दीपक, आवृत्ति आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, हेतु, सूक्ष्म लेश, (या लय) यथसंख्य (या क्रम) प्रेयः, रसवत्, ऊर्जस्वित्, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, अपह्नुति, श्लेष, विशेष, तुल्ययोगिता, विरोध, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, आशीः, संसृष्टि और भाषिक। इसके अतिरिक्त यमक, चित्रबंध एवं प्रहेलिका।

भामह ने जिन अलङ्कारों का विवेचन किया है दण्डी ने भी उन्हीं का विवेचन किया है। भेद केवल इसी बात में पाया जाता है कि भामह ने हेतु, सूक्ष्म एवं लेश अलङ्कारों का खण्डन कर दिया है जब कि दण्डी ने उन्हें बाणी का उत्तम भूषण मानकर अलङ्कारों के विकास में जोड़ दिया है। इसके अतिरिक्त दीपक अलङ्कार के नवीन भेद 'दीपकावृत्ति' की उद्भावना कर दण्डी ने अलङ्कार शास्त्र के क्षेत्र का विस्तार किया है। बाद में यही भेद स्वतन्त्र अलङ्कार बन गया। भामह ने जिन अलङ्कारों को स्वतन्त्र माना है दण्डी ने उन्हें उपमा के भेदों के रूप में ग्रहण किया है जैसे-उपमेयोपमा, प्रतिवस्तूपमा, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, मालोपमा, अनन्वय, संशय, उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा रूपक को इन्होंने रूपक एवं उत्प्रेक्षा में ही अन्तर्भूत किया है। यमक, चित्र और प्रहेलिका का भामह ने संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है जब कि दण्डी ने इसे विस्तृत रूप दिया है। स्वभावोक्ति अलङ्कार को इन्होंने अलङ्कारों में प्रथम स्थान देकर इसके महत्त्व को दिखलाया और सम्पूर्ण वाङ्मय को वक्रोक्ति तथा स्वभावोक्ति इन दो वर्गों में विभक्त किया। स्वभावोक्ति को उन्होंने जाति भी कहा है तथा शास्त्र और काव्य में समान रूप से उसका साम्राज्य स्वीकार किया है। दण्डी के अनुसार श्लेषालङ्कार सभी वक्रोक्तियों की शोभा की वृद्धि करता है।

इस प्रकार दण्डी का भामह से उपर्युक्त बातों में मतभेद दिखाई पड़ता है। भामह ने वक्रोक्ति को अलङ्कारशास्त्र का अपरिहार्य अङ्ग माना है, उसकी नियत अवस्थिति अपेक्षित मानी है, किन्तु दण्डी ने काव्य को दो विभागों में विभक्त कर सर्वत्र वक्रोक्ति को नियत अङ्ग नहीं माना है वरन् स्वभावोक्ति को आधार पर भी काव्य की स्थिति है यह स्वीकार किया है।

इस प्रसंग में मैं यह व्यक्त करना उचित समझता हूं कि वक्रोक्ति से मात्र अलङ्कार का कथन नहीं है, वरन् इतिहास और काव्य में वक्र कथन ही मौलिक भेद का साधन है। अतः स्वभावोक्ति अलङ्कार की स्थिति में विरोध नहीं है। यह कहा जा सकता है कि अलङ्कार के मूलाधार के रूप में भामह

ने जहाँ वक्रोक्ति को स्थान दिया है वहाँ दण्डी ने सादृश्य को मुख्यतम स्थान दिया है।

उद्भट ने सर्वप्रथम अलङ्कारों के वर्गीकरण की ओर ध्यान दिया एवं उसे ६ वर्गों में विभक्त किया। इन्होंने ४१ अलङ्कारों का वर्णन किया है।

अलङ्कारों का विभाजन इस प्रकार है—

प्रथम वर्ग-पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास (तीन प्रकार-परुषा, उपनागरिका, ग्राम्या अथवा कोमला) लाटानुप्रास, रूपक, उपमा, दीपक (तीन प्रकार का) प्रतिवस्तूपमा।

द्वितीयवर्ग—आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति।

तृतीयवर्ग—यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति

चतुर्थवर्ग—प्रेय, रसवत्, ऊर्जस्वित्, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त (दो प्रकार का) श्लिष्ट।

पंचमवर्ग—अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमेयोपमा, सहोक्ति, संकर (चार प्रकार) परिवृत्ति।

षष्ठवर्ग—अनन्वय, ससंदेह, संसृष्टि, भाविक, काव्यलिंग, दृष्टान्त।

इनमें से पुनरुक्तवदाभास, काव्यलिंग, छेकानुप्रास, दृष्टान्त और संकर ये पांचों अलङ्कार उद्भटद्वारा विवेचित नवीन अलङ्कार है। इन्होंने लेश, सूक्ष्म और हेतु अलङ्कारों की चर्चा नहीं की है। इन्होंने यमक अलङ्कार का उल्लेख नहीं किया है। इन्होंने छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, एवं वृत्त्यनुप्रास को स्वतन्त्र अलङ्कार स्वीकार किया है। इन्होंने अतिशयोक्ति के चार प्रकारों का उल्लेख किया है। इन्होंने 'काव्यलिंग' का नाम 'काव्यहेतु' दिया है और 'हेतु' अलङ्कार को काव्यलिंग के अन्तर्गत माना है। अनुप्रास के भेद में परुषा, कोमला तथा उपनागरिका का विवेचन करने का श्रेय सर्वप्रथम इन्हीं को है। इन्हीं विशेषताओं के कारण उद्भट का स्थान संस्कृत साहित्य में अमर है।

उद्भट के पश्चात् संस्कृतसाहित्य में वामन का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वामन ने कुल मिलाकर तैंत्तीस अलङ्कारों का वर्णन किया है जिनमें यमक एवं अनुप्रास शब्दालङ्कार है और शेष उन्तीस अर्थालङ्कार जो इस प्रकार है—उपमा (उसके २७ भेद एवं छह दोषों का वर्णन) प्रतिवस्तु, समासोक्ति,

अप्रस्तुतप्रशंसा, अपह्नुति, रूपक, श्लेष, वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, सन्देह, विरोध, विभावना, अनन्वय, उपमेयोपमा, परिवृत्ति, व्यर्थ, दीपक, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विशेषोक्ति व्याजस्तुति, व्याजोक्ति, तुल्य-योगिता, आक्षेप, सहोक्ति, समाहित, संसृष्टि, उपमारूपक और उत्प्रेक्षावयत्र।

इन्होंने सर्वप्रथम उपमा को मूल अलङ्कार मानकर समस्त अर्थालङ्कार का उपमा के अन्तर्गत मान लिया है। वक्रोक्ति को अर्थालङ्कार मानकर 'लक्षणा सादृश्यगर्भा' को उसका लक्षण माना है। 'व्याजोक्ति' अलङ्कार इनका नवीन निरूपण है।

रुद्रट ने ५७ अर्थालङ्कारों का निरूपण किया है, इनमें से २६ अलङ्कार भरत, भामह, दण्डी और उद्भट द्वारा पूर्व में निरूपण हुआ है। शेष ३१ अलङ्कारों को रुद्रट ने निरूपित किया है। इन्होंने अलङ्कारों के वर्गीकरण को बढ़ाया। इनका विभाजन अत्यन्त वैज्ञानिक है। इनके अनुसार अलङ्कारों के चार विभाजक तत्त्व वास्तव, औपम्य, अतिशय एवं श्लेष हैं। इन्हीं चार तत्त्वों के आधार पर अलङ्कारों के चार वर्ग किए गए हैं।

उनका अलङ्कारों का वर्गीकरण इस प्रकार हैं :—

(अ) वास्तव-इस वर्ग में २३ अलङ्कार है—सहोक्ति, समुच्चय, जाति, यथासंख्य, भाव, पर्याय, विषय, अनुमान, दीपक, परिकर, परिवृत्ति, परिसंख्या हेतु, कारणमाला, व्यतिरेक, अन्योन्या, उत्तर, सार, सूक्ष्म, लेश, अवसर, मीलित, एकावली।

(आ) औपम्य-इस वर्ग में २१ अलङ्कार हैं—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, संशय, समासोक्ति, मत, उत्तर, अन्योक्ति, प्रतीप, अर्थान्तरन्यास, उभयन्यास, भ्रान्तिमान्, आक्षेप, प्रत्यनीक दृष्टान्त, पूर्वसहोक्ति, समुच्चय, साम्य एवं स्मरण।

(इ) अतिशय-इस वर्ग में १२ अलङ्कार हैं—पूर्व, असंगति, पिहित, विशेष, उत्प्रेक्षा, विभावना, तद्गुण, अधिक, विरोध, विषम, व्याघात तथा अहेतु।

(ई) श्लेष—इस वर्ग में केवल श्लेष अलंकार का वर्णन है। वह अलङ्कार दश प्रकार के हैं—अविशेष, विरोध, अधिक, वक्र, व्याज, उक्ति, असम्भव, अवयव, तत्त्व और विरोधाभास।

इस प्रकार रुद्रट ने ५७ अर्थालङ्कारों को निरूपित किया है। इसके अति-रिक्त अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति तथा चित्र इन पाँच शब्दालङ्कारों का

भी विवेचन किया है। इन्होंने ३१ अलङ्कारों को जो बढ़ाया वह इस प्रकार हैं—समुच्चय, भाव, पर्याय, विषम, अनुमान, परिवृत्ति, परिकर, परिसंख्या, कारणमाला, अन्योन्य, उत्तर (प्रथम) सार, अवसर, मीलित, एकावली, मत, उत्तर (द्वितीय) अन्योक्ति, प्रतीप, उभयन्यास, भ्रान्तिमान्, प्रत्यनीक, पूर्व, साम्य, स्मरण, तद्गुण, अधिक, असंगति, पिहित, व्याघात, अहेतु, अविशेषश्लेष, उक्तिश्लेष, व्याजश्लेष, असम्भवश्लेष, तत्त्वश्लेष तथा वक्रश्लेष। इनके मत में साम्य, पिहित और भाव नवीन अलङ्कार हैं। इन अलङ्कारों का वर्णन प्राचीन एवं नवीन आचार्यों के द्वारा नहीं किया गया है। इन्होंने व्याजस्तुति के लिए व्याजश्लेष, स्वभावोक्ति के लिए जाति एवं उदात्त के लिए अवसर नामों का प्रयोग किया है। इन्होंने सर्वप्रथम 'वक्रोक्ति' अलङ्कार को शब्दालङ्कार माना है।

महाराज भोज ने शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार, और उभयालङ्कार मिला कर ७२ अलङ्कारों का वर्णन किया है। इनमें शब्दालङ्कार की संख्या २४, अर्थालङ्कार की २४ एवं उभयालङ्कार की २४ है।

शब्दालङ्कार में निम्नलिखित अलङ्कार हैं—जाति, रीति, वृत्ति, छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, भणिति, गुम्फना, शय्या, पठिति, यमक, श्लेष, अनुप्रास, चित्र, वाकोवाक्य, प्रहेलिका, गूढ़, प्रश्नोत्तर, अध्येय, श्रव्य, प्रेक्ष्य एवं अभिनय।

अर्थालङ्कार निम्नलिखित हैं—जाति, विभावना, हेतु अहेतु, उत्तर, विरोध, संभव, अन्योन्य, परिवृत्ति, निदर्शन (दृष्टान्त), भेद (व्यतिरेक), समाहित, भ्रान्ति, वितर्क, मीलित, स्मृति, भाव, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अभाव।

२४ उभयालङ्कार इस प्रकार हैं—उपमा, रूपक, साम्य, संशयोक्ति, अपह्नुति, समाध्युक्ति, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतस्तुति, तुल्ययोगिता, सहोक्ति, लश, समुच्चय, आक्षेप अर्थान्तरन्यात, विशेषण, परिष्कृति (परिकर), दीपक, क्रम, पर्याय, अनिशय, श्लेष, भाविक तथा संसृष्टि।

इन्होंने अलंकारों के तीन वर्ग किये हैं—वाह्य, आभ्यन्तर एवं उभय। वाह्य को शब्दालंकार, आभ्यान्तर को अर्थालंकार एवं उभय को उभय या मिश्रालंकार कहा गया है। इन्होंने उपमा एवं रूपक के चौबीस-चौबीस भेद किये हैं। इन्होंने छः प्रमाणालंकार, संभव तथा वितर्क मिलाकर लगभग आठ नवीन अलंकारों की कल्पना की है।

अनुप्रास अलंकार की महत्ता प्रदर्शित करते हुए इन्होंने कहा कि उपमा

के न रहने पर भी अनुप्रास से उसकी यानी पूरी हों सकती है अर्थात् उपमा के समान अनुप्रास से ही काव्य में सौन्दर्य आ सकता है।

इस प्रकार अलंकार के सम्बन्ध में इन्होंने जो मान्यताएँ दी वह महत्त्वपूर्ण हैं।

आचार्य मम्मट ने शब्दालंकार एवं ६९ अर्थालंकारों का वर्णन किया है। शब्दालंकार इस प्रकार हैं—वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष और पुनरुक्तवदाभास एवं चित्र।

६१ अर्थालंकारों के नाम निम्नलिखित हैं—उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, उत्प्रेक्षा, ससन्देह, रूपक, अपह्नुति, श्लेष, समासोक्ति, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, अतिशयोक्ति, प्रतिवस्तूपमा दृष्टान्त, दीपक, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक, आक्षेप, विभावना, विशेषोक्ति, यथासंख्य, अर्थान्तरन्यास, विरोधाभास, स्वभावोक्ति, व्याजस्तुति, सहोक्ति, विनोक्ति, परिवृत्ति, भाविक, काव्यलिंग, पर्यायोक्ति, उदात्त, समुच्चय, पर्याय, अनुमान, परिकर, व्याजोक्ति, परिसंख्या, कारणमाला, अन्योन्य, उत्तर, सूक्ष्म, सार, असंगति, समाधि, सम, विषम, अधिक, प्रत्यनीक मीलित, एकावली, स्मृति, भ्रान्तिमान्, प्रतीप सामान्य, विशेष, तद्गुण, अतद्गुण, व्याघात, संसृष्टि और संकर।

इन्होंने विनोक्ति, सम, सामान्य एवं अतद्गुण इन चार अलंकारों को बढ़ाया है। इन्होंने अलंकारों का वर्गीकरण नहीं किया है।

आचार्य रुय्यक के मत में ७५ अलंकार ही अलंकार के रूप में मान्य हैं। उनमें से ये ७१ प्राचीन आचार्यों से लेते और ४ अपनी ओर से उपस्थित हैं।

रुय्यक ने इन अलंकारों जिन (खण्ड) मार्गों और अनुच्छेद में विभाजित किया है उन्हें इस प्रकार स्पष्ट किया जाता है—

१ शुद्ध खण्ड

वर्ग (१) शब्दालंकारवर्ग वा पौनरुक्त्यवर्ग

पौनरुक्त्यविच्छित्ति (१) सर्वपौनरुक्त्य पुनरुक्त्यवाभास
(२) व्यञ्जन पौनरुक्त्य छेकानुप्रास, वृत्तानुप्रास
(३) स्वरव्यंजनसमुदायपौनरुक्त्य यमक
(४) शब्दार्थोभयपौनरुक्त्य लाटानुप्रास
(५) स्थानविशेषश्लिष्टवर्णपौनरुक्त्य मिश्र

(२) अर्थालंकारवर्ग

(१) सादृश्य विच्छित्ति

(क) भेदाभेदतुल्यतापृथक् उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा स्मरण

(ख) अनेकप्राधान्यमूलक

(अ) आरोपाश्रित रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्ति-उल्लेख, अपह्नुति

(आ) अध्यवसायाश्रित उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति (१)

(ग) गम्योपगम्यमूलक तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना

(घ) भेदप्राधान्यमूलक व्यतिरेक, सहोक्ति

(२) विशेषणविच्छित्ति

(क) केवलविशेषणविच्छित्ति समासोक्ति, परिकर

(ख) सविशेष्य-विशेषणविच्छित्ति श्लेष पर्यायोक्त, व्याजस्तुति आक्षेप

(३) गम्यार्थताविच्छित्ति

(४) विरोधविच्छित्ति

(क) शुद्धविरोध विरोध

(ख) कार्यकारणभावाश्रिय विरोधमूलक विभावना, अतिशयोक्ति असंगति विषम, विचित्र व्याघात

(ग) आश्रयाश्रयित्वमूलक अधिक, विशेष

(घ) व्यतिहारमूलक अन्योन्य

(५) शृङ्खलाविच्छित्ति कारणमाला, एकावली, मालादीपक, सार

(६) न्यायविच्छित्ति काव्यलिंग, अनुमान यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति

(क) तर्कन्यायमूलक परिसंख्या स्वपिति, विकल्प

(ख) वाक्यन्यायमूलक समुच्चय, समाधि

(ग) लोकन्यायमूलक प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, तद्गुण, अतद्गुण, उत्तर

(७) गूढार्थचरताविच्छित्ति

(क) शुद्ध सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति

(ख) स्फुटार्थता भाविक

(ग) उदारता — उदात्त

(घ) चित्तवृत्त्योक्ति — रसवत्, प्रेय, अर्जरिण, समाहित, भावोदय, भावसन्धि, भावशक्तता

२ मिश्रखण्ड

(१) संसृष्टि
(क) शब्दालङ्कार संसृष्टि
(ख) अर्थालङ्कार संसृष्टि
(ग) उभयालङ्कार संसृष्टि

(२) संकर

शेष पांच में चार अलङ्कारों को वृत्तिकार में इनमें से कुछ अलङ्कारों के वैपरीत्य के आधार पर सत् तत् संदर्भो में प्रस्तुत बतलाया है। ये निम्नलिखित हैं :—

(१) विनोक्ति	सहोक्ति-विपरीत
(२) अप्रस्तुतप्रशंसा	समासोक्ति-विपरीत
(३) विशेषोक्ति	विभावना-विपरीत
(४) सम	विषम-विपरीत

इसके अतिरिक्त अर्थालङ्कार अर्थान्तर अलङ्कार रह जाता है। इसे अप्रस्तुतप्रशंसा के सन्दर्भ में रखने का कारण वृत्तिकार ने सामान्यविशेषभाव और उसपर आश्रित समर्प्यसमर्पकभाव माना है।

रुय्यक ने इन अलङ्कारों में उपमा के महत्त्व को दिखाते हुए अलङ्कार का बीजभूत माना है।

इनके परवर्त्ती आचार्य शोभाकर मिश्र ने अपने 'अलङ्काररत्नाकर' ग्रन्थ में १११ अलङ्कारों का वर्णन किया है। जिनमें निम्नलिखित ३६ नवीन अलङ्कार हैं :—

अचिन्त्य, अतिशय, अनादर, उदाहरण, अनुकृति, अवरोह, अशक्य, आदर, आपत्ति, उद्भेद, उद्रेक, असल, क्रियातिपत्ति, गूढ़, तन्त्र, तुल्थ, निश्चय, परभाग; प्रतिप्रसव, प्रतिभा, प्रत्यादेश, प्रत्यूह, प्रसंग, वर्द्धमानक, व्याप्ति, व्यासंग, सदेहाभास, सजातीयव्यतिरेक, विकल्पाभास, विध्याभास, विनोद, विपर्यय, विवेक, वैधर्म्य, व्यत्यास और समता।

इसके अतिरिक्त रूपक, स्मरण, सन्देह एवं अपह्नुति अलङ्कारों में लेखक ने समझाने में अपनी मौलिकता दिखाई है। इन्होंने संसृष्टि अलङ्कार का खण्डन किया है।

आचार्य हेमचन्द्र ने छह प्रकार के शब्दालङ्कार एवं २९ प्रकार के अर्थालङ्कारों का विवेचन किया है। शब्दालङ्कार में हैं---अनुप्रास, यमक, चित्र, श्लेष, वक्रोक्ति एवं कुनरुक्तभास।

हेमचन्द्र ने संकर अलंकार के भीतर ही संसृष्टि को रखा है तथा दीपक के भीतर तुल्ययोगिता को। 'परावृत्ति' नामक एक नवीन अलंकार की इन्होंने उद्भावना की है और इसके अन्तर्गत पर्याय एवं परिवृत्ति को रखा है। निदर्शन अलंकार के भीतर प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त का अन्तर्भाव किया गया है।

आचार्य जयदेव ने अपने 'चन्द्रालोक' नामक अलंकार के ग्रन्थ में चार शब्दालंकार एवं ८६ अर्थालंकारों का विवेचन किया। शब्दालंकारों में हैं—अनुप्रास (छेक, वृत्ति, काट, स्फुट, अर्थ) पुनरुक्तप्रतीकाश, यमक एवं चित्र, अनुप्रास के इन पाँचों भेदों में स्फुटानुप्रास एवं अर्थानुप्रास सर्वथा नवीन अलंकार हैं। इन्होंने १७ नवीन अलंकारों का वर्णन किया है जो निम्नप्रकार हैं—उन्मीलित, परिकरांकुर, प्रौढोक्ति, संभावना, प्रहर्षण, विषादन, विकस्वर, विरोधाभास, असंभव, उदारसार, उल्लास, पूर्णरूप, अनुगुण, अवज्ञा, विहित, भाविकच्छभि एवं अत्युक्ति। इन्होंने रसवत् आदि सात अलंकारों को नहीं माना है। संकर असंसृष्टि को इन्होंने अलग अलंकार नहीं माना है। उन्होंने कहा है कि अगर एक पद्य में अधिक अलंकार आ जाय तो उसे संकर या संसृष्टि अलंकार कहा जाता है एवं एक अलंकार की प्रधानता रहने से शुद्ध अलंकार होता है। वक्रोक्ति अलंकार को मूल मानने-वाले व्यक्तियों का भी इन्होंने विरोध किया है।

आचार्य विद्याधर अपने अलङ्कार के विवेचन के लिए आचार्य रुय्यक के ऋणी हैं।

इन्होंने अलङ्कारों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है :—
भेदाभेदप्रधान —उपमा, उपमेयोपमा, अन्वय, स्मरण।
भेदप्रधान—व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति।
अभेदप्रधान--रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्तिमान्, उल्लेख, अपह्नुति।
अध्यवसायाश्रय—उत्प्रेक्षा; अतिशयोक्ति।
गम्योपम्याश्रय—(पदार्थगत) तुल्ययोगिता, दीपक।
वाक्यार्थगत —प्रतियवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना।
विश्लेषणविच्छित्त्याश्रय—समासोक्ति, परिकर, अप्रस्तुतप्रशंसा।
विशेष्यविच्छित्त्याश्रय—परिकरांकुर।

उभयविच्छित्त्याश्रय—श्लेष ।

सामान्यविशेषभाव—अर्थान्तरन्यास ।

प्रतीयमानप्रस्ताव—पर्यायोक्त ।

गम्यत्वविच्छित्तिप्रस्ताव—व्याजस्तुति ।

विशेषगम्यत्व—आक्षेप ।

विरोधगर्भ—विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात ।

शृङ्खलाकार—कारणमाला, एकवढी, मालादीपक, सार ।

तर्कन्यायमूल—यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति ।

एकानेक—परिसंख्या ।

वाक्यन्यास—अर्थापत्ति, विकल्प, समुच्चय, समाधि ।

लोकन्यायाश्रय—प्रत्ययनीक, प्रतीप, मीलित, सामान्यतद्गुण, असद्गुण, उत्तर, प्रश्नोत्तरिका ।

गूढार्थप्रतीति—सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त ।

अन्योन्याश्लेष—संसृष्टि, संकर ।

इन्होंने परिणाम; उल्लेख विचित्र एवं विकल्प अलंकारों का लक्षण रुय्यक के शब्दों में किया है ।

आचार्य विद्यानाथ भी आचार्य रुय्यक के ऋणी हैं । परिणाम, उल्लेख, विचित्र एवं विकल्प अलङ्कार के लिए ये सर्वथा रुय्यक पर आधारित है ।

इनके द्वारा वर्णित शब्दालङ्कारों में हैं—छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, यमक, पुरुक्तवदाभास, काटानुप्रास एवं चित्रालङ्कारों की संख्या ६६ है एवं मित्रालङ्कार में संकर और संसृष्टि है ।

विश्वनाथ ने आठ शब्दालङ्कार, सत्तर अर्थालङ्कार रसवदादि अलङ्कार सात एवं दो मिश्रालङ्कार को निरूपित किया है ।

शब्दालङ्कारों में—पुनरुक्तवदाभास, अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, भाषासम, श्लेष, चित्र एवं प्रहेलिका हैं । भाषासम का वर्णन इन्होंने सर्वप्रथम किया है ।

विश्वनाथ ने अपने पूर्वाचार्यों से पाँच नये अलङ्कारों का निरूपण किया है—श्रुति; अन्त्यनुप्रास, भाषासम, अनुकूल एवं निश्चय ।

अप्पयदीक्षित के 'चित्रमीमांसा' और कुवलयानन्द दो अलङ्कारविषयक ग्रन्थ है। 'चित्रमीमांसा' नामक ग्रन्थ में इन्होंने १२ अलङ्कारों का निरूपण किया है जो चिम्नप्रकार है--उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण, रूपक, परिणाम, ससन्देह, भ्रान्तिमान्, उल्लेख, अपहनुति, उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति। अतिशयोक्ति अलङ्कार तक ही यह समाप्त हो जाता है।

'कुवलयानन्द' ग्रन्थ में इन्होंने १२३ अलङ्कारों का विवेचन किया है। इन अलङ्कारों में अपने समय तक सभी अलङ्कार उनमें है और शेष १७ अलङ्कारों को बढ़ाया है। ये हैं--प्रस्तुतांकुर, अल्प, कारकदीपक, भिध्याध्य-वसिति, ललित, अनुज्ञा, मुद्रा, रत्नावली, विशेषक, गूढ़ोक्ति, विकृतोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध एवं विधि। इन अलंकारों की उद्भावना का श्रेय इनको नहीं दिया जा सकता वरन् इनके सूत्रं भोज, शोभाकरमित्र एवं यशस्क के ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।

इस अलंकार ग्रन्थ में केवल अर्थालंकारा का विवेचन है शब्दालंकार का नहीं!

पण्डितराज जगन्नाथ ने 'रसगंगाधर' ग्रन्थ के द्वितीय आनन में उपमा से उत्तर तक ७० अलङ्कारों का विवेचन किया है। इन्होंने शब्दालङ्कार की चर्चा नहीं की है। तिरस्कार नामक नवीन अलङ्कार की कल्पना की है। इनके ग्रन्थ अधूरे ही है।

आचार्य विश्वेश्वर पण्डित ने रुय्यक, जयदेव, शोभाकर मित्र, विश्वनाथ, अप्ययदीक्षित एवं पण्डितराजजगन्नाथ प्रभृति आचार्यों के द्वारा पढ़ाये गये अलङ्कारों के संख्या को रोकने के लिए प्रयत्न किया। इन्होंने मम्मट द्वारा वर्णित ६१ अर्थालङ्कारों का विवेचन कर शेष अलङ्कारों का इन्हीं में अन्तर्भाव किया।

कतिपय अलङ्कार और विश्वेश्वर :

जगन्नाथ ने दीक्षित के मत का खण्डन किया है उनके अनुसार दीक्षित का रूपक में बिम्बप्रतिबिम्वभाव न मानना भ्रान्ति के कारण ही है।

कुवलयानन्द में विषय एवं विषयी के अभेद एवं ताद्रूप्य वर्णन को रूपक कहा गया है। तात्पर्य यह है कि उपमेय को उपमान के रूप में रंग देना ही रूपक है। यह क्रिया दो प्रकार से होती है—अभेद एवं ताद्रूप्य के द्वारा।

पण्डितराज ने अपनी परिभाषा में नवीनता ला दी है। इनके अनुसार उपमेयतावच्छेदक को आगे रखकर, शब्द द्वारा निश्चित की जाने वाली,

उपमेय में उपमान की एकरूपता ही रूपक है। यदि वह रूपक यहाँ शोभा-जनक हो तो रूपक अलंकार होगा।

विश्वेश्वर पण्डित ने कहा है उपमान और उपमेय में भेदप्रतीति के होते हुए भी कवि अपनी आहार्य क्रिया के द्वारा उनकी भिन्नता को छिपाकर उनमें अभेद स्थापित कर देता है जिससे दोनों की भिन्नता हट जाती है और अत्यधिक सादृश्य के कारण उनमें अभेद स्थापित हो जाता है।

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार प्रवृत्त तथा अप्रवृत्त का एक साधारण धर्म में अन्वय दीपक अलंकार होता है।

संजीवनीकार विद्याचक्रवर्त्ती ने दीपकविवेचन इस प्रकार किया है— प्रस्तुत और अप्रस्तुत का परस्पर वास्तविक किन्तु गम्य सादृश्य दीपक होता है। इसके क्रियादीपक और कारकदीपक दो भेद हैं। वाक्य के आदि, मध्य और अन्त में प्रयुक्त होने से पुनः तीन प्रकार का होने से ६ प्रकार का माना जाता है।

उपमा अलंकार का व्यवहार ऋग्वेद से चला आ रहा है। आचार्य भामह ने उपमा का लक्षण यह दिया है—'देश, काल और क्रिया आदि से विरुद्ध उपमान के साथ गुणलेश के कारण उपमेय की समानता उपमा कहलाती है।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि उपमान और उपमेय न एक स्थान के ही होते हैं, न केवल एक काल के और न उनकी क्रियाएँ ही समान होती है तथापि थोड़ी-गुण की समानता के कारण उनकी परस्पर तुलना ही उपमा है'।

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार जहाँ प्रस्तुत धर्मी का व्यवहार साधारण-विशेषमात्र के द्वारा उपस्थापित अप्रस्तुत धर्मी के व्यवहार से अभिन्न भासित होता हो वह समासोक्ति है।

विश्वेश्वर ने समासोक्ति का लक्षण इस प्रकार किया है—जहाँ केवल विशेषणवाचक पद ही वाच्य और व्यंग्य दोनों अर्थों में समान हों और उनकी शक्ति से अप्रकृतार्थ का कथन हो तो वह समासोक्ति अलंकार है।

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार जिसका जिस पदार्थ से भिन्न होना यथार्थ में ज्ञात होता है, उस पदार्थ की वैसे भिन्न पदार्थ के रूप में की जाने वाली ऐसी संभावना, जो उन दोनों पदार्थों में किसी सुन्दर धर्म के निमित्त मानकर की गई है उसे उत्प्रेक्षा कहते हैं।

आचार्य विश्वेश्वर ने उत्प्रेक्षा के लिए संभावना और सादृश्य दोनों का प्रयोग किया है।

आचार्य विश्वेश्वर के अनुसार—वस्तु का जो स्वभाव होता है उसका निर्वचन स्वभावोक्ति होगा। अर्थात् व्यक्तिविशेष के अपने असाधारण धर्म का वर्णन स्वभावोक्ति कहलाएगा। इन्होंने स्वभाव के दो भेद किये हैं—साधारण तथा प्रातिस्विक।

पण्डितराज जगन्नाथ ने उपमेय धर्म का निषेध दिखलाते हुए आरोपित किये जानेवाले उपमान के अभेद कथन को अपह्नुति अलकार माना है।

आचार्य विश्वेश्वर पंडित ने प्रकृत का शब्दतः या अर्थतः निषेध कर उसके साथ उपमान के तादूप्य-स्थापन को अपह्नुति अलंकार माना।

इन्होंने अपह्नुति के ६ भेद दिये हैं—शुद्धापह्नुति, हेत्वपह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भ्रान्तापह्नुति, छेकापह्नुति, कैतवापह्नुति।

पण्डितरात जगन्नाथ के अनुसार केवल प्रकृतों अथवा केवल अप्रकृतों का गुण क्रिया आदि रूप का किसी एक धर्म मे अन्वय तुल्ययोगिता अलंकार है।

प्रेस के संचालक में दक्ष श्री ब्रजरत्नदास गुप्त की पुनः-पुनः संशोधन करने पर भी उद्वेगशून्यता देखकर उनके धैर्य की प्रशंसा करना मेरा कर्त्तव्य होता है।

मेरे प्रमाद को ही समर्पित करते हुए विद्वज्जन ग्राह्य अंश का रसास्वादन कर मेरे श्रम को सफल करें।

विद्वज्जनचरणचञ्चरीक

महाप्रभु गोस्वामी

अलङ्कारप्रदीपः

श्रीविश्वेश्वरपण्डितविरचितः

अलङ्कारप्रदीपः

श्रीमहाप्रभुलालगोस्वामिप्रणीत-कुसुमलताख्यहिन्दीव्याख्योपेतः

श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐनमः सकलगोपवधूनां स्वात्मनि प्रवणिदप्रणयाय ।
धर्मवासरगमाऽवसरोद्यद्वारिवाहरुचिराय चिराय ॥ १ ॥

सभी गोपिकाओं को अपने हृदय में स्थित प्रेमास्पद ग्रीष्मकाल के व्यतीत होने पर आकाश में परिव्याप्त मेघ के सदृश स्निग्ध श्यामल चिरन्तन परम कमनीय कान्तिवाले (श्रीकृष्ण) को नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

विधाय वाचस्पतये धराया लक्ष्मीधरायाभिमतं प्रणामम् ।
विश्वेश्वरोऽर्थं[1] विशदं वितन्वन् करोत्यलङ्कारकुलप्रदीपम् ॥२॥

वसुन्धरा के लक्ष्मीधर वाचस्पति को यथोचित प्रणाम कर विश्वेश्वर अर्थालङ्कारों के विस्तृत व्याख्यान के द्वारा अलङ्कारसमूहों का प्रकाशक, अर्थात् अलङ्कारप्रदीप की रचना करता है ॥ २ ॥

तत्र—

चमत्कारप्रयोजकं सादृश्यवर्णनमुपमा ॥ १ ॥

चमत्कार का प्रयोजक सादृश्य (मूलक) वर्णन उपमा (अलङ्कार) है ।

सा च पूर्णा लुप्ता चेति द्विविधा । यत्रोपमानमुपमेयं सामान्यधर्म इवादिपदं चेति चतुष्टयमुपात्तं सा पूर्णा ॥ १ ॥

उपमा पूर्णा और लुप्ता के भेद से दो प्रकार की है । जहाँ उपमान, उपमेय, सामान्य धर्म और इव आदि पद इन चारों का निर्देश रहता है, वह पूर्णा उपमा अलङ्कार है ।

---

१. अर्थम् अर्थालङ्कारम् । शब्दालङ्काराणां यमकानुप्रासादीनामन्यत्र विस्तरतो निरूपितत्वादर्थालङ्काराणामेव विशदीकरणे यत्नः ।

यथा —

विकसितमभिरामतमं रदनद्युतिकेसरं रुचिरपत्रम् ॥
अलकश्यामलमाननमलिमलिनं नलिनमिव तस्याः ॥

जैसे:—विकसित सुन्दरतम दाँत की कान्ति के समान केसर = किञ्जल्कवाले सुन्दर किसलययुक्त, केश के समान श्यामवर्ण भ्रमरों से मलिन नीलकमल के समान उसका मुख है।

धर्माभिधाने च बहवः प्रकाराः। अत्रोक्ताः षट्। विकसितमित्युपचारः[1]। पद्मे पत्रविभागात्मकमुख्यो विकाशः, मुखे तूपचारादुल्लासविशेषः। अभिरामेत्यनुगामित्वम्[2] रदनद्युतिवत्केसराणि यत्रेति पद्मपक्षे, रदनद्युतय एव केसराणि यत्रेति मुखपक्षे इति समासभेदः। पत्रपदस्य दलपरत्वं कस्तुर्यादिपत्रलेखापरत्वं चेति श्लेषः। कुन्तलभ्रमरयोर्विम्बप्रतिविम्बभावः[3]। स च वस्तुतो भिन्नयोरप्यन्योऽन्यसादृश्यादभिन्नतयाध्यवसितयोः प्रयोगः श्यामलत्वं मालिन्यं चाभिन्नतया तद्विशेष्यतयोपात्तमिति वस्तुप्रतिवस्तुभावः[4]।

धर्म के कहने के अनेक प्रकार हैं। यहाँ छः प्रकार कहे गये हैं। विकसित यह सादृश्य लक्षणा मूलक है, कमल में सभी कमल दल का विभाग स्वरूप मुख्य विकास है। मुख में उल्लास-विशेष-सादृश्य लक्षणा से है। क्योंकि विकासवाधित होने से सादृश्य मूलक उल्लास में, लक्षणा से इस धर्म का अवगत है। अभिराम=सुन्दर, यह कमल = उपमान, मुख=उपमेय इन दोनों का अनुगत है, दन्तकान्ति के समान केसर = किञ्जल्क जिसमें=पद्म में है, मुखपक्ष में दन्तकान्ति ही केसर स्वरूप जहाँ है=ऐसा अर्थ होता है—यह अर्थ समास के भेद से होता है। पत्रपद दल अर्थ का बोधक है या कस्तूरी आदि पत्र लेखा अर्थ का बोधक है। श्लेष अलङ्कार के द्वारा दोनों अर्थों की प्रतीति होती है। केश और भ्रमर में

---

१. उपचारः सादृश्यलक्षणा।

२. उपमानोपमेयोभयानुगतत्वम्।

३ अत्र उपमेयवृत्तिधर्मस्य विम्बता उपमानवृत्तिधर्मस्य च प्रतिविम्वतेत्यालङ्कारिकसम्प्रदायः।

४. प्रतियोगिभेदेन एकस्यैव धर्मस्य द्विरुपादानं वस्तुप्रतिवस्तुभावः। स च शुद्धो न सम्भवति, किन्तु विम्बप्रतिविम्बभावे विशेषणतया विशेष्यतया वा। प्रकृते च एक एव धर्मः श्यामलमलिनपदाख्यो विशेष्यतया निर्दिष्टः। केचित् 'विमलं वदनं तस्या निष्कलङ्कमृगाङ्कति' इत्यादौ शुद्धोऽपि वस्तुप्रतिवस्तुभावः सम्भवति, वैमल्यनिष्कलङ्कत्वयोर्भेदाभावेन विम्बप्रतिविम्बभावाभावादित्याहुः।

विम्ब और प्रतिविम्ब भाव है। उपमेयवृत्ति धर्म में विम्बत्व और उपमानवृत्ति धर्म में प्रतिविम्बता है। वस्तुतः भिन्न दो प्रदार्थों में परस्पर सादृश्य के कारण अभिन्न रूप में प्रतीत होने के कारण इस प्रयोग में किसी प्रकार की अनुपपत्ति नहीं है।

प्रतियोगी के भेद से एक ही धर्म का दो वार कथन वस्तु-प्रतिवस्तु भाव है। विम्ब-प्रतिविम्ब भाव में यह शुद्ध नहीं हो सकता है, किन्तु विशेषण या विशेष्य रूप में हो सकता है। प्रकृत पक्ष में एक ही धर्म श्यामल और मलिन दो पदों के द्वारा विशेष्य रूप में निर्दिष्ट है। स्थल विशेष में वस्तु-प्रतिवस्तु भाव शुद्ध भी होता है—"विमलं वदनं तस्या निष्कलङ्कमृगाङ्कति" वैमल्य और निष्कलङ्कत्व में भेद न होने पर भी विम्ब-प्रतिविम्ब भाव होता है। श्यामलत्व और मालिन्य के अभिन्न होने पर भी विशेष्यरूप में दोनों धर्म कहे गये हैं।

इवादिपदयोगे इवार्थकवतिप्रत्यये चोपमा श्रौती, तुल्यादियोगे तुल्यार्थकवतिप्रत्यये च आर्थीति सिद्धान्तः। आर्थी यथा पूर्वश्लोके "अवलाया अलिमलिननलिनतुल्यम्" इति पाठे इति बोध्यम्।

इव आदि के प्रयोग में एवं इवार्थकवति प्रत्यय के होने पर श्रौती उपमा रहती है, तुल्यार्थक वति प्रत्यय के प्रयोग में आर्थी उपमा होती है। पूर्व श्लोक में 'अवलाया अलिमलिननलिनतुल्यम्' इस प्रकार प्रयोग करने पर आर्थी उपमा होती है॥ १॥

[1]लुप्ता त्रिविधा—एकलुप्ता, द्विलुप्ता, त्रिलुप्ता चेति। तत्राद्या त्रिधा धर्मलुप्ता वाचकलुप्तोपमानलुप्ता चेति। धर्मलुप्ता पञ्चधा[2]।

लुप्त उपमा तीन प्रकार की है। एक लुप्ता, दो लुप्ता, और तीन लुप्ता। एक लुप्ता भी तीन प्रकार की है— धर्मलुप्ता, वाचकलुप्ता और उपमानलुप्ता।

प्रकृत में प्रयोग का अभाव रूप लोप विवक्षित है, सर्वथा धर्म आदि का न होना ही अभिप्रेत नहीं है,। अन्यथा उपमा नहीं हो सकती है। कहीं शास्त्र और कहीं कवि की इच्छा के कारण प्रयोग का अभाव रहता है। धर्मलुप्ता पाँच प्रकार की है।

१ वाक्यगत धर्मलुप्ता, २ समासगत धर्मलुप्ता। इस प्रकार श्रौती दो प्रकार की है। वाक्यगत, समासगत और तद्धितगत—इस प्रकार तीन तरह की आर्थी धर्म-लुप्ता उपमा है। इनको मिलाकर धर्मलुप्तोपमा पाँच प्रकरकी होती है।

---

१. अत्र प्रयोगाभावरूपो लोपो विवक्षितो न तु सर्वथाऽभावरूपः अन्यथोपमाया एवानिष्पत्तेः। स च क्वचिच्छास्त्रकृतः क्वचिच्च कवयित्रिच्छाकृत इति बोध्यम्।

२. वाक्य-समासगतत्वेन द्विविधा श्रौती, वाक्य-समास-तद्धितगतत्वेन त्रिविधा आर्थी इति मिलित्वा धर्मलोपे पञ्चविधा लुप्तोपमा।

यथा—

मध्ये यथा विहायस्तडिदिव तनुरक्षि तुल्यमब्जेन ।
अधरः सुधासधर्मा कुशेशयाक्षि ! त्वमुर्वशीदेश्या ।।

जैसे :—हे कमलनेत्रे ! तुम्हारा मध्य शरीरभाग आकाश विद्युत् के समान, नेत्र कमल के समान, अधर अमृत के समान धर्मयुक्त तुम उर्वशी के सदृश हो। अर्थात् मध्यभाग अतिशय कृश है।

अत्र वाक्ये समासे च श्रौत्यार्थी च । तद्धिते आर्थी च स्पष्टा । तद्धिते: श्रौत्यां धर्मलुप्ताया असम्भवात् । वाचकलुप्ता षड्विधा ।

यहाँ वाक्य और समास में (क्रमशः) श्रौती और आर्थी है । तद्धित मे आर्थी स्पष्ट है । श्रौती तडिदिव, और अधरः सुधासधर्मा, नेत्र कमल के समान ।

समासगत— सुधासधर्मा , कुशेशयाक्षि है । तद्धितगता—उर्वशीदेश्या ।) तद्धित में श्रौती धर्मलुप्तोपमा सम्भव नहीं है, क्योंकि तद्धित प्रत्यय के विना वाक्य से यह प्रतीति सम्भव नहीं है । वाचकलुप्ता(उपमा) छः प्रकार की है ।

यथा—

वियुक्ताश्चाम्पेयान्यहह दहनीयन्ति मलया—
निलाः श्वासायन्ते तव, नवसुधाधाममधुरे ।
शरव्यीयत्यन्तर्मदनविशिखस्तस्य, भवतीं
रतिश्लेषं श्लिष्यन् कुसुमशरचारं चरतु सः ।।

जैसे:—अहो ! किञ्जल्क या केशर वियोगियों के लिए अग्नि के समान आचरण करता है, मलयवायु तुम्हारे श्वास का आचरण करता है, नवीन अमृत समूहके समान मधुर है ? उसके वह कामबाण अन्तर्हृदय को विद्ध करता है। आलिङ्गन करता हुआ कामबाण के समान आचरण करता है ।

अत्र श्वासायन्त इति कर्तरि क्यङ् । सुधाधाममधुरे इति 'उपमानानि सामान्यवचनैः' (२।१।५५) इति समासभेदः । दहनीयन्ति शरव्यीयतीति कर्मण्यधिकरणे क्यच् । रतिश्लेषं श्लिष्यन्निति कर्मणि णमुल् । कुसुमशर-चारं चरत्विति कर्तरि णमुल । उपमानलुप्ता द्विधा ।

श्वास के समान आचरण करता है कर्ता में क्यङ् प्रत्यय कर श्वासायन्ते प्रयोग में धर्म का लोप है । सुधा समूह के समान मधुर यहाँ उपमानानि सामान्यवचनैः (२।१।५५) इस सूत्र से समास होने से समास गत धर्म लुप्तोपमा है । दहनीयन्ति और शरव्यीयति ये दोनों कर्म में अधिकरण में क्यच् प्रत्यय है । रतिश्लेषं श्लिष्यन् इसमें कर्म में णमुल् प्रत्यय है । कुसुमशरचारं चरतु यह कर्ता में णमुल् प्रत्यय है । उपमान लुप्ता दो प्रकार की है ।

यथा—

१ चेतःसंवननं न विद्म इव तत् त्वं गीयसे यत्समा ।
२ नेत्रासेचनकं च यस्य भवती कल्याणि तुल्या भवेत् ।
तेन त्वत्कुचजातरूपकलशे विन्यस्यमानो मुदा
यूनस्तस्य नवप्रवालतु करः पुष्पाशुगीयत्ययम् ॥

जैसे—हे कल्याणि ! तुम जिसके समान हो उस चित्त के वशीकरण को, जिसके समान है उसको नहीं जानते हैं, नेत्र के अतृप्तिकर अर्थात् सदा देखने की इच्छा वाले पदार्थ के सदृश हो, इसलिए उस युवक का आनन्दपूर्वक कुच स्वर्णकलश पर रखा गया नव प्रवाल कर कामबाण के समान आचरण करता है ।

अत्र पूर्वार्द्धे समासे वाक्ये चोपमानमप्रयुक्तम् । द्विलुप्ता पञ्चविधा । क्विप्समासयोर्द्धर्मवाचकलुप्ता यथा—"नवप्रवालतु कर" इति । अत्राचारार्थकस्य क्विप् इवशब्दस्य च लोपात् । अग्रिमपद्ये च 'बिम्बाधर' इति । अत्रोत्तरपदलोपिसमासे सदृशपदलोपे (वाचक) धर्माप्रयोगयोः सत्वात् । पुष्पाशुगीयतीति क्यचि वाचकोपमेयलुप्ता । पुष्पाशुगमिवात्मानमाचरतीत्यर्थे उपमेयस्यात्मन इवशब्दस्य च प्रयोगाभावात् ।

पूर्व के आधे श्लोक में समस्त और वाक्य दोनों मे उपमान का प्रयोग नहीं है—अतः उपमान लुप्ता है । उपमान और धर्मलुप्ता उपमा पाँच प्रकार की है—

क्विप् प्रत्यय और समस्त में धर्मवाचक लुप्ता उपमा है । यथा—नव प्रवाल सदृश कर, यहाँ आचार अर्थ को कहने वाले क्विप् और इव शब्द का लोप है, और आगे के पद्य में बिम्ब के समान अधर = बिम्बाधर इस पद में उत्तरपदलोपी समास (मध्यमपदलोपी समास मे) सदृश वाचक शब्द और धर्म का अप्रयोग है, पुष्पाशुगीयती=पुष्पबाण के समान आचारणकर्ता आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय होने से वाचक पद और उपमेय का लोप है पुष्पाशुग-कामबाण के समान अपना आचरण करता है इस अर्थ में उपमेय उपमान और इव शब्द का प्रयोग न होने से उपमेय और सदृश के वाचक शब्द का लोप उपमेय और वाचक लुप्तोपमा हैं ।

त्वद्बिम्बाधरवृत्तेः साम्यस्य निरूपको यः स्यात् ।
यत्सादृश्यं दृश्यपि स दृश्यते नैव हरिणाक्षि ! ॥

हे हरिणनयने ! तुम्हारे बिम्ब सदृश अधर के वर्तन (ज्ञान) के सादृश्य निरूपक जो है, उसके ज्ञान में भी जो सादृश्य है वह भी कहीं दिखाई नहीं देता है ।

---

१. संवननं वशीकरणम् 'वशक्रिया संवननम्' इत्यमरात् ।
२. तदासेचनेकं तृप्तेर्नास्त्यन्तो यस्य दर्शनात् । इत्यमरः ।

अत्र वाक्ये समासे च धर्मोपमानलुप्ता। त्रिलुप्ता यथा –'हरिणाक्षि' इति। हरिणस्याक्षिणी इवाक्षिणी यस्या इति धर्मोपमानवाचकलुप्ता। इत्थमेकोनविंशतिभेदा लुप्ता।

प्रस्तुत वाक्य और समास में धर्म और उपमान लुप्ता उपमा है। धर्म, उपमान और वाचक तीन का लोप जिसमें है, ऐसी त्रिलुप्ता उपमा हरिणाक्षि ! अर्थात् हरिण के नेत्र के समान नेत्र हैं जिसके इस समस्त पद में है। यहाँ धर्म उपमान और वाचक शब्द तीनों का लोप है। इस प्रकार २१ प्रकार की लुप्तोपमा है।

एकस्मिन्नुपमेये बहूपमानसादृश्यं मालोपमा।

एक ही उपमेय में अनेक उपमान का सादृश्य मालोपमा है।

यथा—

रमन्ते मालायामिव कुसुममय्यां मधुकरा-
श्चमत्कारोद्रेकादिव रुचिचकोरा हिमरुचः।
सरस्यां सौरभ्यादिव वरतनु ! श्वेतगरुतो
भवत्यामेतस्यां मम हृदयवृत्तिव्यतिकराः॥

जैसे—हे सुन्दररमणि ! कुसुममयी माला में मधुकर गण के समान रमण करते हैं, चमत्कार के उद्रेक से प्रिय हिमरूप चकोर के समान, तालाव में सुगन्ध के कारण हंसगण के समान, आपकी माला में मेरी हृदयवृत्ति का सम्बन्ध है, रमण करते हैं।

पूर्वपूर्वोपमायामुपमेयस्योत्तरोत्तरोपमायामुपमानत्वेन कथनं रशनोपमा।

पूर्व पूर्व उपमा में उपमेय का उत्तर उत्तरवर्ती उपमा का उपमान के रूप में कथन रशनोपमा है।

यथा—

अधर इवोक्तिर्मधुरा तनुलक्ष्मीरुक्तिवद्विशदवर्णा।
तनुरिव मनोहरा दृग्दृगिव मृगाक्ष्याः सुदुःसहो विरहः॥

जैसे—अधर के समान वचन मधुर है शरीर (शोभा या लावण्य) वाणी के समान विमल वर्णवाली है, शरीर के समान मनोहर नेत्र हैं, नेत्र के समान मृगनेत्री का विरह अतिशय दुःसह है।

आरोप्यस्यारोपविषयतादात्म्यापत्त्या प्रकृतोपयोगः परिणामः।

आरोप्य का आरोपविषय के साथ तादात्म्य होने से प्रकृत में उपयोग परिणाम है।

यथा—
बालेयं सविलासं विवलितवदना विलोकयति ।
कमनीयतैकनिधिना प्रसेदुषा नेत्रनलिनेन ।।

जैसे—यह मृदुमुखी बाला, विलासपूर्वक लावण्य के निधानस्वरूप विमल नेत्र-कमल से देख रही है।

नेत्रमिव नलिनमिति रूपकस्वीकारे नलिनस्य विशेष्यतया वीक्षणानुपयोगः । न चोपमा, नेत्रं नलिनमिवेति समासस्य दुर्लभत्वात् कमनीयेत्यादि-सामान्यधर्मप्रयोगात् । 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' (२।१।५६) इति सूत्रात् । अतो नलिनस्य नेत्रतादात्म्यापत्त्यैव प्रकृतोपयोगः ।

नेत्र के समान कमल यह रूपक मानने पर कमल के विशेष्य होने से अवलोकन का उपयोग नहीं हो सकता है, और यह उपमा भी नहीं है, नेत्र नलिन के समान इस विग्रह में समास ही दुर्लभ है, क्योंकि कमनीयता आदि सामान्य धर्म का प्रयोग रहने से 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' इस सूत्र के द्वारा सामान्य धर्म का प्रयोग न रहने पर ही समास का विधान किया गया हो । अतः नलिन=कमल का नेत्र के साथ तादात्म्य कर ही प्रकृत में उपयोग सम्भव है

सामान्येन निरूपितस्य विशेषेण निरूपणमुदाहरणम्[1] ।। ३ ।।

सामान्य रूप से निरूपित विषय का विशेष रूपसे निरूपण होने पर उदाहरण अलङ्कार होता है ।। ३ ।।

यथा—
हेयः सन्नपि विषयः स्वरूपतोऽस्मि-
न्नादेयो भवति समीहितानुकूलः ।
चन्द्रास्ये ! हृदयकदर्थनानिदानं
सम्भोगानुगुणतयेव विप्रलम्भः ।।

---

१. विशेषेण सामान्यसमर्थनरूपार्थान्तरन्यासभेदेन नास्य गतार्थता, यथेवदृष्टान्तादिशब्दघटितत्वादस्य तद्रहितत्वाच्चार्थान्तरन्यासस्य । इवशब्दघटितस्थले उपमया गतार्थत्वशङ्कापि न कार्या, लक्षणयेवादेः सामान्यविशेषात्मकवाक्यार्थयोरवयवावयविभावपरत्वेन उपमाप्रयोजकसादृश्यासमुल्लासात् । इवादिरहितस्थले आर्थेनानेनैवोपपत्तौ नार्थान्तरन्यास आश्रयणीय इति न वक्तव्यम् । द्वयोर्वैलक्षण्यस्य जागरूकत्वात् । तथा हि—यत्र विशेषवाक्यार्थेन सामान्यवाक्यार्थः समर्थ्यते तत्र द्वयी गतिर्भवति । अनुवाद्यांशे विशेषत्वं विधेयांशस्तु सामान्यगत इत्येका, उभयांशेऽपि विशेषत्वमित्यन्या । तत्र पूर्वा उदाहरणालङ्कारस्य विषयः । अन्या अर्थान्तरन्यासस्य इत्यादि रसगङ्गाधरे उदाहरणालङ्कारप्रकरणे अर्थान्तरन्यासप्रकरणे च प्रतिपादितम् ।

जैसे—हे चन्द्रमुखि ! हृदय के कष्ट का साधन विप्रलम्भ=वियोग सम्भोग के अनुरूप होने से अभीष्ट के अनुगुण=अनुकूल होने से इसमें स्वरूपतः हेय-विषयता होने पर भी ग्राह्य ही है।

[विशेष से सामान्य का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास के भेद में यह अलङ्कार गतार्थ नहीं है। क्योंकि अर्थान्तरन्यास यथा, इव दृष्टान्त आदि शब्द से रहित होता है और उदाहरण अलङ्कार इससे घटित होता है। इव शब्द का प्रयोग रहने पर उपमा से इस अलङ्कार की गतार्थता सम्भव नहीं है। सामान्य विशेष रूप वाक्यार्थों में लक्षणा से इव आदि शब्द अवयव–अवयविभाव परक है, अतः इव आदि शब्द सादृश्य का प्रत्यायक नहीं है। इव आदि के प्रयोग से शून्य स्थल में इस अर्थ से ही उपपत्ति होने से अर्थान्तर न्यास का आश्रयण नहीं करना चाहिए यह कथन भी ठीक नहीं है, दोनों की विलक्षणता स्पष्ट है। क्योंकि जहाँ विशेष वाक्यार्थ से सामान्य वाक्यार्थ का समर्थन होता है वहाँ दो गति हो सकती है:—

(१) अनुवाद्य अंश में विशेषता और विधेयांश सामान्यगत होता है।

(२) दोनो अंशों में विशेषत्व रहता है। इनमें पूर्व उदाहरण अलङ्कार का विषय है अतः इससे अन्य अर्थान्तरन्यासालङ्कार का विषय है।

उपमानोपमेययोर्ज्ञायमानमैक्यमनन्वयः ॥ ४ ॥

उपमान और उपमेय में ज्ञायमान की एकता अनन्वय अलङ्कार है ॥ ४ ॥

यथा —

तत्तत्सुन्दरभावभावकधियां सन्दाननं मन्दिरं
मन्दाक्षस्य विलासमानभवनं शीलैकशालायिता ॥
अन्यस्माद्विषयान्मनोनयनयोर्व्यावृत्तिमातन्वती
लोकेऽस्मिन्वरवर्णिनि ! त्वमिव मे सत्यं त्वमाभाससे ॥

जैसे—विशेष-विशेष सुन्दर भाव-भावना-सम्पन्न बुद्धियों का खण्डन, सङ्कुचित नेत्रों का अर्थात् लज्जा का स्थानभूत विलास और मान का भवन शील की शाला स्वरूप, अन्य विषयों से मन और नयन की निवृत्ति कराती हुई, हे वरवर्णिनि ! अपने समान तुम स्वयं हो ऐसी प्रतीति मुझे होती है।

सर्वथैवोपमाननिषेधोऽसमः ॥ ५ ॥

सर्वथा उपमान का निषेध असम अलङ्कार है ॥ ५ ॥

यथा—

भवदौपम्यनिरूपकमभिदधतां बालिशा बहुशः ।
इह सहृदयो रहस्यं व्याहरति न किञ्चिदस्तीति ॥

जैसे:—अनेक मूर्खगण तुम्हारे सदृश निरूपक का भले ही अभिधान करे किन्तु सहृदय रहस्य का उपस्थापन करते हुए सत्य ही कहता है कि कोई भी पदार्थ तुम्हारे सदृश नहीं है। अर्थात् तुम सर्वथा असम हो।

परस्परसादृश्यमुपमेयोपमा ॥ ६ ॥

परस्पर सादृश्य का निरूपण उपमेयोपमा है ॥ ६ ॥

यथा—

मदनमतिवेलयन्ती दिक्ष्ववदातत्वमादधती।
त्वं चन्द्रिकेव विदिता वरवर्णिनि ! चन्द्रिका त्वमिव ॥

अनन्वये उपमानान्तरव्यवच्छेदो व्यङ्ग्यः, असमे वाच्यः, उपमेयोपमायां तृतीयोपमानव्यवच्छेदो व्यङ्ग्य इति विशेषः।

जैसे:—हे वरवर्णिनि ! काम को अतिशय उत्तेजित करती हुई दिशाओं में नैर्मल्य सम्पादन करती हुई तुम चन्द्रिका के समान प्रसिद्ध हो, और चन्द्रिका तुम्हारे समान है। अनन्वय में अन्य उपमान का निराकरण व्यङ्ग्य रहता है और असम अलङ्कार में वाच्य रहता है। उपमेयोपमा में तृतीय उपमान का व्यवच्छेद व्यङ्ग्य रहता है।

प्रकृतेऽप्रकृततादात्म्यसम्भावनमुत्प्रेक्षा ॥ ७ ॥

प्रस्तुत में अप्रस्तुत का साम्यसम्पादन उत्प्रेक्षा है ॥ ७ ॥

सा त्रिविधा। स्वरूपहेतुफलभेदात्।

वह तीन प्रकार की है :—
(१) स्वरूप, (२) हेतु, (३) और फल के भेद से।

स्वरूपोत्प्रेक्षा यथा –

(१) स्वरूप उत्प्रेक्षा यथा :—

नवजपाकुसुमद्युतिपाटलो विधुमुखि ! प्रतिभाति तवाधरः।
तरुणतातरुणा नवपल्लवो विशदतामुपनीत इव स्वयम् ॥

हे चन्द्रमुखि ! नवीन जपापुष्प की कान्ति के समान रक्तवर्ण तुम्हारा अधर है, यौवन वृक्ष के द्वारा नवीन पल्लव का स्वयं विकास सम्पादित किया गया है !

अत्राधरे तादात्म्येन पल्लवस्यारोपः।

यहाँ अधर में तादात्म्य के रूप में पल्लव का आरोप है।

हेतूत्प्रेक्षा यथा—

(२) हेतु की उत्प्रेक्षा यथा :—

अंहस्संहतियोगादिव मुक्तानां हिमे सरोजानाम्।
मलिनं मण्डलमिन्दोरवदातं तव मुखं सुकृतैः ॥

पाप समूह के योग से हिमकाल में सरोज मुक्ता के समान इन्दु का मण्डल मलिन है और पुण्यों से तुम्हारा मुख विशुद्ध=निर्मल है।

अत्र स्वकृतादृष्टविशेषो मुखलावण्यहेतुः तत्र तादात्म्येन कमलसुकृतस्यारोपः। एवमन्यदप्यह्यम्।

प्रस्तुत पद्य में तुम्हारे द्वारा सम्पादित अदृष्ट विशेष मुख के लावण्य का साधन है और वहाँ तादात्म्य के रूप में कमल के पुण्य का आरोप है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों का भी समन्वय करना चाहिए।

फलोत्प्रेक्षा यथा—

(३) फल की उत्प्रेक्षा। यथा :—

चक्षुस्त्वदीक्षणोत्सुकमाकणितभवदुदन्तवृन्देन।
तस्याः श्रोत्रेण समं मिलितुमिव तदन्तिकं याति॥

तुम्हारी चर्चाओं के सुनने के कारण, तुमको देखने की उत्कण्ठा से उसके नेत्र कानों से मिलने के लिए उनके समीप जाता है।

अत्र तदन्तिकगमनफलं तत्संयोगः तत्र वृत्तान्तश्रवणेच्छाजन्यत्वस्य तादात्म्येनारोपः॥ ८॥

अर्थात् कर्णान्ति नेत्र है। कान के समीप जाने का फल उसका संयोग है वहाँ वृत्तान्त श्रवण इच्छाजन्यत्व का तादात्म्य रूप से आरोप है।

सादृश्यनिबन्धनः प्रकृतसंशयः सन्देहः॥ ८॥

सादृश्य निबन्धन प्रस्तुत संशय सन्देह अलङ्कार है॥ ८॥

वितर्क-विकल्प-रूपकनिरूपणम्।

वितर्क-विकल्प-निरूप का निरूपण।

यथा—

प्रसूनसमवायिभिर्मलयजस्य चारम्भकै-
मृणालपरमाणुभिः किमु कलाभिरिन्दोः किमु।
व्यधायि किमु वेधसा कुसुमधन्वनाऽहो इति
प्रिये तव कलेवरं समवलोक्य सन्दिह्यते॥

जैसे—हे प्रिये! तुम्हारे शरीर को देखकर सन्देह होता है कि पुष्पसमूहों से या मलयजन्य आरम्भक-मृणाल परमाणुओं से या इन्दु की कलाओं से, कुसुम धनुष धारण करने वाले विधाता ने ही तुम्हारा निर्माण किया है क्या?

संशयोत्तरमनिर्णये ऊहो वितर्कः॥ ९॥

संशय के बाद अनिर्णय की स्थिति में तर्क-वितर्क है॥ ९॥

यथा—

किमेतद्राजीवं रजनिषु तदुल्लासरहितं
सुधांशोर्बिम्बं किं तदपि च कलङ्कं कलयति।
किमादर्शः स्पर्शो भवति कठिनोऽस्येति दयिता-
मुखं साक्षात्कुर्वन्सहृदयजनोऽभ्यूहतितमाम् ॥

अत्र यदीदं कमलं स्यात्तर्हि रात्रावुल्लासवश्च स्यात् इति तर्कस्यापातात् यो रात्रावुल्लासाभावः स च मुखे नास्तीति तात्पर्यम्।

जैसे:—रमणी के मुख का साक्षात्कार कर सहृदय व्यक्ति यह वितर्क करते हैं कि क्या यह कमल है, नहीं, वह निशा में शोभा रहित रहता है, क्या यह चन्द्र विम्ब है, किन्तु वह कलङ्क युक्त है, क्या यह ऐनक है? नहीं उसका तो कठिन स्पर्श रहता है, रमणी के मुख का साक्षात् अवलम्बन कर सहृदय जन ऐसा वितर्क करते हैं।

प्रकृत के यदि यह मुख कमल रहता तो रात्रि में उल्लास सम्पन्न नहीं रहता इस तर्क की उपस्थिति से कमल में निशा में जो उल्लास शून्यता है वह मुख में नहीं है—यह तात्पर्य हैं।

विरुद्धयोः पाक्षिकी प्राप्तिर्विकल्पः ॥ १० ॥

विरुद्ध विषयों की पक्ष में प्राप्ति विकल्प अलङ्कार है ॥ १० ॥

जीवनहेतोर्दयिततमस्य प्राणस्य वैष सखि !।
आगमने गमने वा दिवसं समुपैत्यवधिरद्य ॥

अत्र प्रियतमस्यागपनं प्राणगमनं वेत्यन्यतरस्य पाक्षिकी प्राप्ति ॥ १० ॥

जैसे :—हे सखि ! प्राण के जीवन साधन प्रियतम के आगमन और प्राण के गमन में दिवस व्यतीत हो रहा है, आज अवधि है।

प्रियतम का आगमन या प्राण का गमन इनमें एक की पाक्षिक प्राप्ति है ॥१०॥

उपमेये उपमानतादात्म्यारोपो रूपकम् ॥ ११ ॥

उपमेय में उपमान के तादात्म्य का आरोप रूपक है ॥ ११ ॥

तच्च द्विविधम्। सावयवनिरवयवभेदात्। तत्र सावयवं द्विविधम्। (समस्तवस्तुविषयमेकदेशविर्वात च।) सर्वेषामारोप्यारोपविषयाणां शब्दोपात्तत्वे समस्तुवस्तुविषयम्।

रूपक दो प्रकार का है :—(१) सावयव, (२) निरवयव।

सावयव भी दो प्रकार का है :—(१) समस्त-वस्तु-विषय, (२) एक-देश-विवर्ती।

सभी आरोप्य और आरोप विषयों के शब्द से कथित रहने पर समस्त वस्तु विषय का रूपक है।

यथा—

कस्तूरिकातिमिरतो मलिनीयमानौ
वामेक्षणे ! भवदुरोरुहचक्रवाकौ ।
हाराग्रहीरकसुधानिधिपद्मराग-
भानू निरीक्ष्य भवतो न मिथः पृथग्वा ॥

जैसे—हे वामनेत्रे ! कस्तूरिका कि श्यामता से मलिनता प्राप्त आपके वक्षःस्थल उत्पन्न चक्रवाकद्वय आपके हारवलय के अग्र भाग स्थित हीरक युक्त अमृत सागर पद्मराग सूर्य को देखकर यह नहीं अवगत हुआ कि ये एक हैं या अलग हैं।

जहाँ कोई अर्थ कवि की इच्छा से प्रसूत रहता है, कोई अर्थ से लब्ध अर्थ रहता है—वह एक-देश-विवर्ती रूपक है।

यत्र केचिदिच्छावहः[1] केचिदार्थास्तदेकशविर्वात ।

यथा—

चुम्बिता सुमनसामनेहसा[2] स्नेहसारसदृशं वनस्थली ।
आतनोति कलकण्ठकूजितं सीत्कृतं कुवलयाक्षि ! भावय ॥

जैसे :—हे कमलनेत्रे ! वसन्त के द्वारा वनस्थली चुम्बित हुई स्नेह पूर्व के समान कोकिल कण्ठ कूजितसीत्कार का विस्तार कर रही है, देखो ।

अत्र वसन्ते आरोप्यो नायकः, वनस्थल्यां नायिका चेति द्वयमर्थगम्यम् । पिकरवे सीत्कृतारोपेण तदाक्षेपः ।

यहाँ वसन्त में आरोप्य नायक और वनस्थली में आरोप्य नायिका दोनों ही अर्थात् गम्य है, क्योंकि पिक के शब्द में सीत्कार का आरोप होने से इस अर्थ का आक्षेप होता है।

निरवयवं यथा—

प्रगल्भेभ्योऽप्यन्तःकरणतरलत्वापहरणं
यतस्तेभ्यस्तेभ्यो भजति विषयेभ्यो विमुखताम ।
शरद्राकाजैवातृकमुखि ! विना त्वां प्रियतमो
निपीतायाः सोऽयं त्वदधरसुधाया मधुरिमा ॥

निरवयव रूपक, यथा:—

हे शरत्कालीन-पूर्णिमा-चन्द्र-मुखि ? तुम्हारे विना भी निपीत तुम्हारी अधरसुधा की प्रियतम मधुरिमा, अन्तःकरण द्रुति को अपहरण करने में प्रौढ़ उन सभी विषयों से विमुखता को प्राप्त करता है।

---

१. इच्छावहाः, ऐच्छिकाः शब्दोपात्ता इति यावत् ।

२. सुमनसामनेहसा, वसन्तेन ।

अत्रैक एवारोपः।
प्रस्तुत में एक ही आरोप है।

एकस्मिन्नुपमेये बहूपमानतादात्म्यारोपो मालारूपकम् ॥११॥

श्लेष के अभाव में यथा :—

एक ही उपमेय में अनेक उपमान के तादात्म्य का आरोप माला रूपक है ॥११॥

यथा—

पुष्पेषोर्वीरयात्राजयपटहरवोऽपूर्वश्रृङ्गारसूत्र-
व्याख्याभाष्यप्रपञ्चस्तरुणिमकरिणो बृंहितस्यानबन्धः।
सौन्दर्यैकप्रशस्तिर्निधुवनकलहोपक्रमस्वस्तिवादः
श्रुत्योः पीयूषपूरो जयति कलकलं कामिनीकाञ्चिदाम्नः॥

जैसे :—कामदेव की वीरयात्रा प्रसङ्ग में जय ढक्का शब्द, अपूर्व-श्रृङ्गार सूत्रकी व्याख्या भाष्य प्रपञ्च, तारुण्ययुक्तहस्ति वृन्द का उपक्रम सम्बन्ध, सौन्दर्यात्मिक प्रशस्तिसे केलि-कलह का उपक्रम का स्वस्तिवाचन कर्णों के लिए अमृतमय कामिनी की रशना करधनी का कल-कल शब्द सभी की अपेक्षा उत्कृष्ट रूप से वर्तमान है।

आरोपान्तरसापेक्ष आरोपः पारम्परितम्।

अन्य आरोप सापेक्ष आरोप पारम्परित अलङ्कार है॥ ११॥

(तच्च श्लिष्टाश्लिष्टशब्दनिबन्धनत्वेन द्विविधम्)
यह श्लिष्ट और अश्लिष्ट शब्द के भेद से दो प्रकार का है।

यथा—

रागोत्तरेण रजनी निधिना कलानां
सौरभ्यवैभववता परिरभ्यमाणा।
उत्सार्यमाणतिमिरोत्करकेशपाशा
तारा: प्रसूननिवहानिव निर्जहाति॥

जैसे—कलाओं के निधि सौरभ्य वैभव सम्पन्न के द्वारा अतिशय अनुराग पूर्वक पूर्वतः आलिङ्गित रजनी अन्धकार रूपी केश समूह तारकों को पुष्प समूह के समान परित्याग कर फैला देती है।

अत्र कलानिधिपदं श्लिष्टम्।

इसमें कलानिधि पद श्लिष्ट है। चन्द्रमा या सुरतकलाममंज्ञ।

श्लेषाभावे यथा—

अन्तर्निगूढमपि गुम्फितगूढभाव-
कोलाहलं कलहहालहलं सहेलम् ॥
सद्योऽपसारयति भीरु ! रसालवीरु-
द्वद्धावधानमधुपध्वनिसिद्धमन्त्रः ॥

श्लेषभाव में जैसे—हे भीरु ! अन्दर में निहित व्यक्त रहस्यात्मक कोलाहल कामिनियों के श्रृङ्गार-भावजन्य रतोत्सव कलह विष को आम्रवृक्ष मञ्जरी पान-साधना सम्पन्न भ्रमर-ध्वनि सिद्ध मन्त्र तुरत ही दूर कर देते हैं ।

अत्र (कलहे) विषारोपस्तदपनायकत्वेन भ्रमरगुञ्जिते मन्त्रारोपे निमित्तम् ।

इस में कलह में विष का आरोप उसके दूर करने में भ्रमर गुञ्जन में मन्त्र के आरोप का कारण है ।

प्रसिद्धक्रमाणामेकत्रोपनिबन्धनं रत्नावली ॥ १२ ॥

प्रसिद्ध क्रमों का एक जगह में उपनिबन्धन प्रयोग रत्नावली अलङ्कार है ॥१२॥

यथा—

[1]लक्षमनङ्गस्य मतं कलेवरं तव सुधांशुमुखि ! ।
अब्जं पुनस्तनुभृतां ततः परार्द्धं सहृदयानाम् ॥

जैसे—हे चन्द्रमुखि ! तुम्हारा शरीर कामदेव शरव्य या लक्ष संख्या है, शरीर-धारियों के लिए पद्म या पद्म संख्या है, सहृदयों के लिए सर्वश्रेष्ठ चरम संख्या है ।

अत्र लक्षादिसङ्ख्यानां श्लेषेण निबन्धनम् ।

प्रकृत में लक्ष आदि संख्याओं का श्लेष से निबद्ध किया गया है ।

प्रकृतनिषेधविशिष्टस्तदन्यारोपोऽपह्नुतिः ॥१३॥

प्रस्तुत के निषेध के साथ अन्य का आरोप अपह्नुति है ॥ १३ ॥

निषेधो द्विधा शाब्दश्चार्थश्च ।

शाब्दिक और आर्थिक के भेद से निषेध दो प्रकार का है ।

शाब्दे निषेधे यथा—

सुन्दरि ! नेन्दुरयं किमु नभोऽङ्गणे तारातण्डुलजिघत्सुः ।
हरिहयहरिन्महेलाहेलापारावतः स्फुरति ॥

---

१. लक्षे शरव्ये सङ्ख्यायामिति विश्वः । अब्जं कमलं तद्वत्सुकुमारत्वात् । पक्षे शतकोटिसङ्ख्या । परार्धं श्रेष्ठम् । पक्षे सङ्ख्यान्तरानपकृष्टसङ्ख्याविशेषः ।

शब्द निषेध जैसे—हे सुन्दरि ! तारक रूपी तण्डुल को खाने का इच्छुक, आकाश-रूपी प्राङ्गण में क्या यह इन्दु नहीं, अपितु वानर, घोडा, हरित् महेला क्रीडा कबूतर स्फुरित होता है।

आर्थे यथा—

ताटङ्कमौक्तिकमिषाद्वरतनु ! नक्षत्रपङ्क्तिरियम् ।
किमपि परिष्कुरुते तव शब्दग्रहसाधनं गगनम्[1] ।।

आर्थिक जैसे—हे सुन्दरगात्रे ! ताटङ्क मुक्ता के व्याज से यह नक्षत्र पंक्ति है, तुम्हारे शब्द साक्षात्कार साधन गगनरूपी कर्णेन्द्रिय को परिष्कृत कर रहा है।

अत्र मिषपदेन नैतानि मौक्तिकानि किंतु श्रोत्रस्याकाशात्मकतया तदीय-नक्षत्राणीति गम्यते। अत्रैव कैतवापह्नुतिरिति व्यवहारः। क्वचित्सहेतुको विषयनिषेधः[2] ।

मिष=व्याज पद के द्वारा ये मौक्तिक नहीं है, किन्तु कान आकाश स्वरूप होनेसे उसके तारक हैं यह अवगत होता है, यहाँ व्यापक से अपह्नति का व्यावहार है, कहीं कारण पूर्वक विषय का निषेध है। विषयी अर्थात् धर्मी के रहने पर विषय अर्थात् धर्म का निषेध होता है। कुवलयानन्द में हेतु अपह्नति शब्द से यही कहा गया है।

यथा—

न वयमवयवार्थस्यान्वयादन्वयामो[3]
मतिमिह हिमधामाभेदमुद्गाहमानाम्[1] ।।
विरहिनयनमीनत्रासदाने निदानं
गगनसरसि खेलन्व्यंसकोऽयं चकास्ति[2] ।।

जैसे—अवयवार्थ के सम्बन्ध से हम गतिशील नहीं हैं। हिम से अभिन्न स्थान जिसका है उससे अभेद का आलोडन करने वाली बुद्धि इस प्रसङ्ग में विरही के नयन रूपी मछली को भय प्रदान करने का कारण गगन सरोवर में क्रीडा करता हुआ धूर्त देदीप्यमान हो रहा है।

---

१. शब्दसाक्षात्कारहेतुभूतमाकाशं श्रोत्रेन्द्रियमिति यावत्। कर्णशष्कुल्यवच्छिन्न-नभस एव श्रोत्रत्वात्।

२. यस्मिन् विषयिणि धर्मिणि यो विषयो धर्मस्तस्य निषेधः। अयमेव कुवलयानन्दे हेत्वपह्नुतित्वेनोक्तः।

(३) अन्वयाम इति अनुदात्तेत्वप्रयुक्तात्मनेपदानित्यत्वश्रयणेन अयगतौ इत्यस्य, इट किट कटी इत्यत्र प्रश्लिष्टस्य ईधातोर्वाऽनुपूर्वस्य रूपमिति ध्येयम्।

१. हिमधामाभेदम् हिमाभिन्नं धाम यस्य स तदभेदम्।

२. व्यंसको धूर्तः।

प्रकृत में चन्द्र में चन्द्रत्व का निषेध में आह्लादकत्व अर्थात् आनन्दप्रदत्व के अभाव को साधन कहा गया है। किसी-किसी स्थल में विषय के हेतु के कहने पर भी विषय का निषेध किया जाता है।

यथा—

प्रकाशादाशानां तिमिरनिकुरम्बाणि तिरय-
त्यशक्यं सङ्कोचं गमयति समूहं जलरुहाम्॥
तथापि प्रज्ञेयं हृदि सहृदयानाममुदयते
विधुर्नायं किन्तु प्रणयिनि! मुखं ते विधुरिति॥

जैसे :—हे प्रणयिनि! प्रकाश के द्वारा दिशाओं के अन्धकार समूह का नाश कर रहा है, कमल समूह को विकसित कर रहा है, किन्तु सहृदयों के मन में ऐसा भान हो रहा है कि यह चन्द्रमा नहीं है, अपितु तुम्हारा मुख ही चन्द्रमा है।

स्वकीयतात्पर्यख्यापनेन परभ्रान्तिखण्डनं भ्रान्त्यपह्नुतिः॥ १॥

अपने तात्पर्य के प्रकाशन के द्वारा दूसरे की भ्रान्ति का खण्डन भ्रान्ति अपह्नुति अलङ्कार है।

यथा--

दूरीकरोति कुचयोः सिचयोपराग-[1]
मासञ्जयत्यवयवेषु परागयोगम्।[2]
किं भेजिषे विषयतां मलयानिलस्य
मुग्धे! न, किन्तु हृदयाभिमतस्य तस्य॥

जैसे :—हे मुग्धे! कुचों के साथ वस्त्र का सम्बन्ध हटा रहा है, अवयवों में सुरत श्रम शान्ति के साधन कर्पूर आदि का चूर्ण अर्थात् धूलि संश्लिष्ट हो रही है। क्या मलयानिल की विषयता का भजन कर रही है, नहीं ऐसी बात नहीं है, वरन् उसके हृदय के अभिमत का चिन्तन कर रही है।

परकीयप्रमाखण्डनाय स्वतात्पर्यं स्यान्यथाकरणं छेकापह्नुतिः॥ २॥

दूसरे के यथार्थज्ञान के खण्डन के लिए अपने तात्पर्य का भिन्न रूप से प्रकाशन छेकापह्नुति है॥ २॥

यथा--

आकुलयति कुचमुकुलं चुम्बति बिम्बाधरं दृशौ स्पृशति।
दयिततमः किमधिगतो न हि सहचरि! विभ्रमन्भ्रमर॥

जैसे :—हे सखि! कुच कलिका को व्यथित कर रहा है, बिम्ब सदृश अधर का चुम्बन कर रहा है, दोनों नेत्रों का आलिङ्गन कर रहा है, क्या प्रियतम आ गया है, नहीं, घूम रहा भ्रमर है।

---

१. सिचयस्य वस्त्रस्य उपरागं सम्बन्धम्।

२. परागः धूलिः सुरतश्रमशान्तिनिमित्तककर्पूरादिचूर्णं च।

अप्रकृतनिषेधविशिष्टप्रकृतस्थापनं निश्चयः ॥ १४ ॥

अप्रस्तुत का निषेध पूर्वक प्रस्तुत का स्थापन निश्चय अलङ्कार हैं ॥ १४ ॥

यथा—तीरे[1] तरणिसुतायास्तमालविथीयमुल्लसति ।
किमिति त्वरया दूरादध्वग ! नावं गवेषयसि ॥

अत्र तमालमालायां भ्रान्त्या प्रसक्तं यमुनातादात्म्यं निषिध्य वस्तुतस्तमालमालातादात्म्यस्य स्थापनम् ।

जैसे :—हे पान्थ ! यमुना के तीर पर तमाल की यह पंक्ति शोभायमान है, क्यों दूर से शीघ्रता वश नौका का अन्वेषण कर रहे हो ।

कालिन्दी के तट पर वर्तमान तमाल माला को देखकर यमुना जल की भ्रान्ति से नौका का अन्वेषण करने वाले पथिक की भ्रान्ति को दूर करते हुए यह कहा गया है ।

प्रकृत में तमाल माला में यमुना के तादात्म्य की भ्रान्ति का प्रतिषेध कर वस्तुतः इसमें तमालमाला में तादात्म्य की स्थापना की गई है ।

शब्दैक्ये सत्यनेकार्थकथनं श्लेषः ॥ १५ ॥

शब्द के एक होने पर अनेक अर्थ का कथन श्लेष है ॥ १५ ॥

स च द्विधा । अभङ्गसभङ्गभेदात् ।

यथा—पूर्वा[2] हरिदपि तमसा श्यामेयमकारि जृम्भमाणेन ।
तस्यामेव कलानिधिराधास्यति रागमुद्गच्छन् ॥

अत्रैकानुपूर्वीकपदानामेव भिन्नार्थकत्वम् । द्वितीयो भिन्नानुपूर्वीकशब्दबोध्यान्यार्थकः । स चाष्टधा । वर्ण-पद-लिङ्ग-भाषा-प्रकृति-प्रत्यय-विभक्ति-वचनभेदात् ।

जैसे :—पूर्व दिशा अन्धकार से श्याम वर्णा होने पर भी उसी दिशा में चन्द्रमा के उदय के द्वारा राग को = लालिमा को फैलायेगा इस पक्ष में हरित् दिशा और हरित् वर्ण ये दोनों अर्थ होते हैं, श्यामा नायिका और कृष्ण वर्ण ये दोनों अर्थ होते हैं, कलानिधि चन्द्र और विदग्ध, राग लाल रङ्ग और अनुराग दोनों अर्थ होता है, अतः एक ही अनुपूर्वी के पदों से भिन्न अर्थों का प्रतिपादन होता है ।

---

१. अत्र कालिन्दीतीरलग्नतमालमालायां कालिन्दीभ्रान्त्या नावं गवेषयन्तं पान्थं प्रति कयाचित् तद्भ्रमखण्डनेन तरणोपायो नापेक्षित इति प्रतिपाद्यते ।

२. अत्र हरित् दिक् हरिद्वर्णा च, श्यामा नायिका कृष्णरूपा च, कलानिधिश्चन्द्रो विदग्धश्च, रागं रक्तवर्णत्वम् अनुरागं च इति एकानुपूर्वीमद्भिः पदैर्भिन्नार्थप्रतिपादनादभङ्गश्लेषः ।

दूसरा भिन्न अनुपूर्वी के शब्दों से अन्य अर्थ की बोधकता। यह आठ प्रकार की है। १ वर्ण, २ पद, ३ लिङ्ग, ४ भाषा, ५ प्रकृति, ६ प्रत्यय, ७ विभक्ति; और ८ वचन के भेद से'।

वर्णश्लेषो यथा—

खञ्जनमञ्जुलनयने ! त्वया समासञ्जितो यदसौ।
तेन तदीयावयवा बाधां दधतीति साधीयः॥

अत्र असु—असिशब्दयोरसाविति सप्तम्येकवचने तुल्यम्।

वर्णश्लेष जैसे :—हे खञ्जन के समान सुन्दर-नेत्रवाली ! तुम्हारे द्वारा बाण या तलवार से भलीभाँति विद्ध होने पर उसके अवयव बाधा प्रदान कर रहे हैं—यह ठीक ही है।

यहाँ असु और असि शब्दों का 'असौ' यह रूप सप्तमी के एकवचन में होता है। दोनों शब्दों के सप्तमी के एक-वचन में समान रूप होता है।

पदश्लेषो यथा—

अलकावलोकने तव[1] सारम्भा मम दगुत्सुकिता।
उपरुद्धा निकषाभवचेलेन बतान्तरा मिलता॥

अत्रालकानाम् अलकाया वेत्यादिपदभेदः।

पदश्लेष जैसे :—अलकों के (केशों के) या अलकापुरी के अवलोकन से उपक्रम करनेवाली रम्भा अर्थात् स्वर्ग की वेश्या ममत्व शून्य दृष्टि से उत्कण्ठित हुई मध्य में मिलने वाले रावण से समीप में रोकी गई।

यहाँ प्रर अलकों के या अलका के इत्यादि पद भेद है।

लिङ्गभेदो यथा—

दधती मदनविकारं कमलानां मालिकामुपहसन्ती।
यूनां मनो हरन्ती सुतनु ! त्वं च त्वदीयनेत्रे च॥

लिङ्ग भेद जैसे :—हे सुन्दर-शरीरवाली ! कामविकार को धारण करती हुई कमलों की मालिका का उपहास करती हुई, युवकों के मन को हरण करती हुई ये तुम्हारे नेत्र हैं।

भाषाश्लेषो यथा—

साहसकी सरसं तं मोहं मा गच्छ भण सुमासवहम्।
इत्याहेत्यभिदधतीं दयिततमो मानिनीमनुनिनीषन्॥

---

१. सारम्भा कृतोपक्रमा सा रम्भा स्ववेंश्या, अममदक् ममत्वशून्यदृष्टिः, निकषाभवं समीपस्थं चेलं वस्त्रं तेन प० निकषाभवो राक्षसः चेलः कुत्सितार्थः रावणेनेत्यर्थः। उत्तरकाण्डस्येयं कथा।

अत्र तं पूर्वकालीनं मद्विषयकं (रसं) मोघं व्यर्थं कस्मात्कथयसि, मा आगच्छ आगमन-(प्रयोजन) स्य मत्परिरम्भादेर्दुर्लभत्वात्, भण मा शपथमिति नायिकावाक्यार्थः । साहसकी साहसयुक्ता, सरसं साभिनिवेशम्, मोहं मदपराधभ्रमं मा गच्छ माप्नुहि सुमानां पुष्पाणाम् आसः क्षेपः तद्वहं तद्वत्सुकुमारं यथा स्यात्तथा भण न तु निष्ठुरमिति नायकवाक्यार्थः ।

भाषाश्लेष जैसे :—पूर्ववर्ती उस मेरे विषय के रस को व्यर्थ क्यों कहते हो, मत आओ, क्योंकि आगमन के प्रयोजन जो मेरे साथ आलिङ्गन आदि दुर्लभ हैं; कसम मत कहो—यह नायिका का वाक्यार्थ है। साहसयुक्त, साभिनिवेश मेरे अपराध को मत प्राप्त करो, पुष्पों को फेकने को धारण करने वाले के समान सुकुमार कहो, निष्ठुर मत कहो—यह नायक वाक्य का अर्थ है।

प्रकृत्यादिचतुष्टयश्लेषो यथा—

माकन्दः[1] कुसुमं प्रधास्यति मधुप्रस्यन्दमिन्दिन्दिरः
श्रोतारः पिककूजितानि परमामार्तिं गमिष्यन्ति च ।
प्रत्यक्षं मलयानिलस्य सुरभिस्पर्शौ समायास्यतः
सञ्चिन्त्येति मनो वियुक्तसुतनोः सख्यश्च गाते श्रमम् ॥

प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति और वचनों के भेद से जैसे :—

मधु-प्रस्यन्दनशाली मधुकर कुसुम धारण करेंगे या पान करेंगे, पिककूजित को सुनने वाला अतिशय कष्ट प्राप्त करेंगे, आती हुई मलयानिल का प्रत्यक्ष सुगन्ध और स्पर्श प्राप्त करते हुए वियुक्त सुन्दर शरीर का और मित्र को मन से सोंचकर श्रम प्राप्त करेंगे।

प्रस्तुत पद्य में प्रधास्यति यह धारण और पोषण अर्थ को कहने वाले धाञ् धातु या धेट् पाने का रूप है—यह प्रकृति श्लेष है। 'श्रोतारः' यह श्रुधातु के लुट्लकार एवं तृन् प्रत्यय के बहुवचन का रूप है। तृन् पक्ष में "न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (२–३–६९) इससे षष्ठी का निषेध होता है। "सामायास्यतः" यह षष्ठयन्त मलयानिल का विशेषण है या क्रियापद है—यह विभक्ति श्लेष है। 'गाते' यह गाङ् गतौ धातु के एकवचन और बहुवचन में तुल्य रूप है। यहाँ वचन-श्लेष है।

---

१. प्रधास्यति इति धाञो धेटश्च रूपम् । अत्र प्रकृतिश्लेषः । श्रोतारः इति श्रुधातोर्लुटि' तृनि च बहुवचने रूपम् । तृन्पक्षे 'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (२।३।६९) इति षष्ठीनिषेधः । अत्र प्रत्ययश्लेषः । समायास्यतः इति षष्ठयन्तं मलयानिलस्य इत्यस्य विशेषणम्, क्रियापदं वा । अत्र च विभक्तिश्लेषः । गाते इति गाङ् गतौ इत्यस्य एकवचने बहुवचने च तुल्यं रूपम् । अत्र वचनश्लेषः । श्रमं = खेदम् ।

प्रकृतवृत्तान्तेनाप्रकृतप्रतीतिः समासोक्तिः ॥ १६ ॥

प्रकृत वृत्तान्त से अप्रस्तुत प्रतीति समासोक्ति है ॥ १६ ॥

यथा—ऊर्ध्वीकृत्य ग्रीवां चकोरि ! किं वा दिदृक्षसे चन्द्रम् ।
अयथास्थानस्थापितपञ्जररुद्धं न वेत्सि स्वम् ॥

अत्र प्रकृतचकोरीव्यवहारेण क्वचिदनुरक्तायाः पराधीननायिकायाः प्रतीतिः। अत्र प्रकृतेऽप्रकृतनायिकादिव्यवहार एवारोप्यत इति सर्वस्वकारादयः। नायिकात्वादिकमप्यारोप्यत इति रसगङ्गाधरादयः।

हे चकोरि ! ग्रीवा को ऊपर कर चन्द्रमा को देखने की इच्छा करती हो, अनुचित स्थान में स्थापित पञ्जर में अवरुद्ध अपने को नहीं समझती हो।

यहाँ प्रस्तुत चकोरी के व्यवहार से कहीं अनुरक्त पराधीन नायिका की प्रतीति होती है। यहाँ प्रकृत में अप्रकृत नायिका के व्यवहार का आरोप किया जाता है। यह सर्वस्वकार आदि ने कहा है।

नायिका त्वादि का भी आरोप है—यह रसगङ्गाधरकार ने कहा है।

अन्वयानुपपत्त्या सादृश्यपर्यवसानं निदर्शना ॥ १७ ॥

अन्वय की अनुपपत्ति से सादृश्य में पर्यवसान निदर्शना है ॥ १७ ॥

यथा—वदनमधि विधुविधुन्तुदमधुमाधुर्य्यं दधाति वाष्पाम्बु ।
कज्जलमलिनितमक्ष्णोरम्बुजरोलम्बसम्बलनम् ॥

अन्यदीयधर्मस्यान्येन धारणानुपपत्त्या सादृश्यसिद्धिः ॥

जैसे :—मुख चन्द्रमा पसीने की बूंद जो चन्द्र के पीड़ादायक माधुर्य्यं को धारण करता है। कज्जल से मलिन भ्रमर समूह को धारण करते हैं। अन्य के धर्म का अन्य के द्वारा धारण की अनुपपत्ति से सादृश्य की सिद्धि होती है।

क्रियया हेतुहेतुमद्भावप्रतीतिर्द्वितीया निदर्शना ॥ १ ॥

क्रिया के द्वारा हेतुहेतुमद्भाव की प्रतीति द्वितीय निदर्शना है ॥ १ ॥

यथा—मुधैव विरुणद्धि योऽधिकगुणेन सार्द्धं, स त-
न्निरूपितपराभवं भजति भावये भामिनि ! ।
भवद्वदनभव्यतां समभिमन्यमानो विधुः
कपोलफलके तव प्रतिफलन् पराभूयते ॥

जैसे :—हे भामिनि ! अधिक गुण के कारण व्यर्थ ही जो विरोध करते हैं, वह उसके कारण पराजय को अनुभव करते हैं—यह मैं समझता हूँ। तुम्हारे मुख

के सौन्दर्य को मानने वाला चन्द्रमा कपोल पटल पर प्रतिबिम्बित हो पराजित होता है।

अत्र स्वोत्कृष्टविरोधः पराभवहेतुरिति सामान्यकार्यकारणभावः पूर्वार्द्ध-प्रतिपाद्यः। तत्रोत्तरार्द्धं दृष्टान्तः। तत्र वदनं गुणाधिक्यविशेषः चन्द्रोऽपकृष्ट-विशेषः। कार्यमुभयत्र पराभव एव।

अपने से उत्कृष्ट का विरोध पराजय का कारण है, अतः सामान्य कार्य-कारण-भाव पूर्वार्द्ध का प्रतिपाद्य है और इसमें उत्तरार्द्ध दृष्टान्त है। मुख में गुण की अधिकता से विशेष और चन्द्र में अपकृष्टता से विशेष है, दोनों स्थलों में पराभव ही कार्य है।

प्रकृतमनुपन्यस्य तत्स्थानीयवाक्यार्थान्तरोपन्यासो ललितम् ॥१८॥

प्रस्तुत निर्देशकर तत्स्थानीय अन्य वाक्यार्थ का निर्देश ललित है ॥ १८ ॥

यथा—मधुरतामवधेहि मधोरिमां मलयमारुतमाकलयाबले!।
किमिति नावदधासि मुधाऽबुधे! विधिवशान्निधिमाहितसन्निधिम् ॥

अत्र स्वयमागतं नायकं किमित्युपक्षसे इति प्रकृतमनभिधाय तत्सम-जातीयस्य स्वयमुपस्थितनिधिं कस्मान्नाद्रियसे इत्यस्योपन्यासः।

जैसे :—हे अबले! मधुमास की मधुरता का अवधारण करो, 'मलय मारुत को समझो, हे ज्ञानशून्ये! भाग्यवश समीप में प्राप्त निधि को क्यों नहीं आदर करती हो।

प्रकृत में यह कहा गया है कि स्वयं आये हुए नायक की क्यों उपेक्षा करती हो, इस प्रस्तुत को न कह कर उसके समान स्वयं उपस्थित रत्न का क्यों नहीं आदर करती हो इसका निर्देश किया गया है।

अप्रकृतवृत्तान्तेन प्रकृतप्रतीतिरप्रस्तुतप्रशंसा ॥ १९ ॥

अप्रस्तुत वृत्तान्त से प्रस्तुत प्रतीति अप्रस्तुतप्रशंसा है ॥ १९ ॥

सा च पञ्चविधा। कार्ये प्रस्तुते कारणस्योक्तिर्यथा—

धुरि मधुरिमधराणामधीयते मधु मुधैव वैधेयाः[1]।
बिम्बाधरं वधूनामभिदधति विशुद्धधीनिधयः ॥

अत्र नायिकामात्राऽऽसक्तौ वाच्यायां तद्धेतोरधरमाधुर्यस्याभिधानम्।

वह पांच प्रकार की है। कार्य के प्रस्तुत रहने पर कारण का कथन।
जैसे :—मूर्खगण व्यर्थ ही मधु को माधुर्य्य में श्रेष्ठ है मानते हैं, विशुद्ध ज्ञान

१. मूर्खवैधेयबालिशा इत्यमरः।

सम्पन्न व्यक्तियों ने नायिकाओं के बिम्ब सदृश अधर को मधुरतम माना है। नायिका मात्र में आसक्ति को सूचन करने में लिए उसके कारण अधर के माधुर्य्य का अभिधान किया है।

कारणे प्रस्तुते कार्यस्योक्तिर्यथा—

जृम्भायामम्भोरुहवदनाया भवदवेक्षणभवायाम्।
पुलकोदञ्चितकञ्चुकसन्धिभिराबन्धि चटचटाशब्दः॥
अत्र सा त्वय्यत्यन्तमनुरक्तेतिवक्तव्ये तत्कार्यमुक्तम्।

कारण के प्रस्तुत होने पर कार्य की प्रशंसा।

जैसे :—कमलमुखी आपके अवलोकन से उत्पन्न जम्भाई से पुलक के कारण उत्थित कञ्चुक सन्धियों से चटचटा शब्द बन्धन ने किया।

प्रकृत में वह तुम्हारे प्रति अतिशय अनुरक्त है इसको कहने की जगह उसके कार्य को कहा।

सामान्याभिधाने विशेषाभिधानं यथा—

शिञ्जानेन[1] समञ्जसमिह मञ्जीरेण खञ्जनाक्षि! कृतम्।
क्षणमलिगुञ्जितविरही दुरवस्थः स्यादशोककुसुमौघः॥

अत्र यद्व्यतिरेको यदीयविलक्षणशोभाव्यतिरेकप्रयोजकस्तद्रहितस्य तस्य जन्मानर्थकमिति सामान्ये भ्रमरगुञ्जिताभावेऽशोककुसुमानां शोभाराहित्यमापादितम्।

सामान्य कथन से विशेष कथन।

जैसे :—हे खञ्जननेत्रवाली! मुखरित तुम्हारे नूपुर ने यहाँ इसे शोभा सम्पन्न किया, अन्यथा अशोक कुसुम समूह भ्रमरों के गुञ्जन से शून्य शोभाशून्य ही रहते।

साहित्यिक सम्प्रदाय के अनुसार नायिका के चरण के अघात से अशोक में पुष्प उत्पन्न होने पर भी भ्रमरों के अभाव से शोभाहीन रहते, किन्तु नूपुर शब्द से पुष्प की उत्पत्ति के साथ ही भ्रमर-ध्वनि सजातीय ध्वनि के सम्बन्ध से वैजात्य प्राप्ति को दूर किया, प्रकृत में जो अभाव से विलक्षण शोभा जो अभाव का कारण था; जिसके बिना उसकी उत्पत्ति ही निरर्थक थी इस सामान्य कथन के द्वारा भ्रमर के गुञ्जन के अभाव में अशोक पुष्पों को शोभा-शून्य प्रतिपादित किया।

---

१. अत्र दोहदाय विहिताशोकचरणताडना काचित्केनचिदुच्यते। आकस्मिकचरणतलताडनोत्पन्नानां पुष्पाणां तदानीं भ्रमरसंयोगाभावेन तद्गुंजितहीनतया शोभाविशेषहानिः स्यात्। नूपुरकूजितसम्पत्त्या तु उत्पत्तिकालावच्छेदेनैव भ्रमरध्वनिसजातीतध्वनिसम्बन्धात्तत्प्रयुक्तवैजात्यहानिर्न भवतीति भावः।

विशेषे प्रस्तुते सामान्याभिधानं यथा—

कुसुमशरवश्यमनसो नूतनकुवलयदलद्रोहिनयनायाः।
तन्वि ! विभावय दयिते नैव विरुध्यासितुं युक्तम् ॥

अत्र कामार्तायास्तव दयितानादरो न युक्त इति विशेषे वाच्ये ईदृश्या नायिकाया दयितानादरणं न युक्तमिति सामान्यमुक्तम्।

विशेष प्रस्तुत होने पर सामान्य का कथन।

जैसे :—हे कृशगात्रवाली ! कामवाण से अधीन मन वाले नायक का अभिनव कमल दल के द्रोही नयन वाली तुम्हारे द्वारा प्रियतम से विरोध करना उचित नहीं है—यह समझो।

कामार्त तुम्हारे द्वारा प्रिय का अनादर ठीक नहीं है, इस विशेष कथन में नायिका के द्वारा प्रियतम अनादर उचित नहीं है—यह सामान्य कहा गया है।

तुल्ये वाच्ये तुल्याभिधानं यथा—

अस्माभिरेव विहितस्तव लवलि ! लवङ्गसंसर्गः।
अधुना वेल्लितविटपा मुखमप्यस्मिन्निवर्तयसि ॥

अत्र नायकसङ्घटनोत्तरं दूतीमनाद्रियमाणायां नायिकायां तत्सदृशी लवली उक्ता।

समान वाच्य से समान का कथन।

जैसे :—हे लवलि ! लेशमात्र मेरे द्वारा लवङ्ग का संयोग तुमने प्राप्त किया है, इस समय लवङ्गलता से वेष्टित होकर अपना मुख भी मुझसे घूमा लिया है।

प्रकृत में नायक की प्राप्ति के बाद दूती का अनादर करने वाली नायिका को उससे समान लवली है यह कहा है।

प्रस्तुतवृत्तान्तेन प्रस्तुतप्रतीतिः प्रस्तुताङ्कुरः ॥ २० ॥

प्रस्तुत वृत्तान्त से प्रस्तुत से प्रस्तुतप्रतीति प्रस्तुताङ्कुर है ॥ २० ॥

यथा—लोभेन त्वद्बिम्बाधररसपीयूषपानस्य ॥

[1]संविहितचरणपातस्तं रागी यावकः श्रयति।

अत्र यावकप्रक्रमे चरणानामानन्तरमधरसम्बन्धोक्त्या प्रस्तुतस्य प्रणामानन्तरसम्भोगार्थिनो नायकस्य वृत्तान्तप्रतीतिः।

जैसे—तुम्हारे विम्बसदृश अधर रस सुधा पान के लोभ से तुम्हारे चरण

---

१. पातः संयोगः प्रणामश्च। रागी रक्तवर्णः स्नेहवांश्च। यावकः अलक्तकः, यौति मिश्रीभवितुमर्हतीति च।

पर विहित संयोग का प्रमाण, रक्तवर्ण और अनुरागवान् आलक्तक (आलता) उससे संयुक्त होना व्यक्त करता है।

प्रकृत में आलता के उपक्रम से चरण सम्बन्ध के बाद अधर सम्बन्ध के कथन से प्रस्तुत प्रणाम के बाद सम्भोग के अभिलाषी नायक के वृत्तान्त की प्रतीति होती है।

प्रस्तुताप्रस्तुतयोः सर्वथैवाभेदप्रतीतिरतिशयोक्तिः ॥ २१ ॥

प्रस्तुत और अप्रस्तुत की सर्वथा अभेद प्रतीति अतिशयोक्ति है।। २१ ॥

यथा—विलसति परिच्छिन्नं व्योमस्तनन्धयमुष्टिना
मिहिरमिलनादव्याकोशं कुशेशयकोरकम्।
अहनि रजनावेकाकारं सुधानिधिमण्डलं
भुवि विजयते दृश्या विद्युन्महान्तमनेहसम् ॥

अत्र नायिकाया मध्यकुचमुखतनूनां व्योमाद्युपमानवाचकपदैरेव गौण-वृत्त्याऽभिधानम्।

अतिशिशु अमुष्टिसे परिच्छिन्न आकाश सा शोभायमान हो रहा है, चन्द्र के संयोग से अविकसित पद्मकली दिन और रात में समान आकार वाला चन्द्र मण्डल नेत्र विद्युत् से अतिशय देदीप्यमान संसार में सभी की अपेक्षा उत्कृष्ट है।

प्रकृत में नायिका के मध्य स्तन मुख शरीर का व्योम आदि उपमान वाचक पदों से गौणवृत्ति से कहा गया है।

तस्यैवान्यत्वाभिधानं भेदकातिशयोक्तिः ॥ १ ॥

असम्बन्ध में सम्बन्ध की कल्पना सम्बन्धातिशयोक्ति है ॥ १ ॥

यथा—विच्छित्तिरत्यन्तविलक्षणेयमनन्यजोज्जृम्भितमन्यदेव[1]।
अन्यानि दृग्भङ्गतरङ्गितानि तस्या विजातीयमथोक्तिजातम् ॥

यह विच्छेद अत्यन्त विलक्षण है, काम जन्य उज्जृम्भण भिन्न ही है। अक्षिभङ्ग-तरङ्ग विलक्षण ही है, नायिका का वचन जाल विलक्षण ही है।

असम्बन्धे सम्बन्धकल्पनं सम्बन्धातिशयोक्तिः ॥ २ ॥

इसी का अन्य रूपसे कथन भेदक अतिशयोक्ति है।

यथा—निशि भवदास्यसमुद्भवपरिमलमाजिघ्रदेकजातीयम्।
पद्मस्मितमनुमिनुते कोककुलं केलिवापीषु ॥

---

१. अनन्यजः कामः।

अत्र चक्रवाकानां तादृशानुमित्यसम्बन्धेऽपि तादृशसम्बन्ध उक्तः ।

जैसे :—रात्रि में तुम्हारे मुख से उत्पन्न समान जातीय पद्मसमान सुगन्ध को सूंघता हुआ चक्रवाक समूह केलिसरोवर में पद्मविकास का अनुमान करता है । इस पद्य मे चक्रवाकों में इस प्रकार की अनुमिति का असम्बन्ध होने पर भी सम्बन्ध कहा गया है ।

सम्बन्धेऽप्यसम्बन्धकथनं द्वितीयाऽऽसम्बन्धातिशयोक्तिः ॥ ३ ॥

सम्बन्ध रहने पर भी असम्बन्ध का कथन द्वितीय असम्बन्ध अतिशयोक्ति है॥३॥

यथा—तुन्दपरिमृज्ञमिदं ते मुखरुचिपानाच्चकोरकुलम् ।
राकायामपि चन्द्रज्योत्स्नापानाय नो यतते ॥

अत्र ज्योत्स्नास्वादनयत्नसम्बन्धेऽप्यस्य सम्बन्ध उक्तः ।

अलस मन्द यह चक्रवाक समूह तुम्हारे मुख सौन्दर्य के पान से पूर्णिमा की चन्द्रमा की चांदनी के पान के लिए भी प्रयत्न नहीं कर रहे हैं ।

प्रकृत में ज्योत्स्ना पान के प्रयत्न का सम्बन्ध रहने पर भी असम्बन्ध कहा गया है ।

कार्यकारणयोर्यौगपद्यमक्रमातिशयोक्तिः ॥ ४ ॥

कार्य-कारण में योगपद्य अक्रम अतिशयोक्ति है ॥ ४ ॥

यथा—निपतितं गजगामिनि ! मामकं तव कलेवरवीरुधि-लोचनम् ।
अपि हृदि क्षणमाप्य तदैव मे निपतिता रतिनायकसायकाः ॥

हे गजगामिनि ! तुम्हारी शरीरलता पर मेरा लोचन निपतित होते ही उसी क्षण मेरे हृदय पर भी कामदेव का वाण निपतित हुआ ।

हेतुप्रसक्तावेव कार्योत्पत्तिकथनं चपलातिशयोक्तिः ॥ ५ ॥

हेतु की प्रसक्ति के समय ही कार्य की उत्पत्ति का कथन चपलातिशयोक्ति है ॥ ५ ॥

यथा—गेहपतावायास्यति दयिततमे च प्रवत्स्यति गृहिण्याः ।
तनुतोदयेन तत्क्षणमनर्थबीजं समर्थितप्रायम् ॥

अत्र प्रियप्रवाससम्भावनायामेव तत्कार्यतनुत्वस्योत्पत्तेः कथनम् ।

जैसे :—गृहपति आयेंगे और प्रियतम प्रवास के लिए जायेंगे इस सम्भावना से ही गृहिणी की कृशता की प्राप्ति से उसी क्षण अनर्थ बीज समर्थित प्राय है ।

प्रियतमा के प्रवास की सम्भावना में ही उसके कार्य कृशत्व की उत्पत्ति कही गई है ।

कारणात्प्रागेव कार्योत्पत्तिकथनमत्यन्तातिशयोक्तिः ॥ ६ ॥

कारण से पहले से ही कार्य की उत्पत्ति का कहना अत्यन्त अतिशयोक्ति है ॥६॥

यथा—प्रययुर्मदीयहृदयाद् गुणा विवेकादयः प्रथमम्।
सर्वस्वं मदनस्य न्यविशत् स्वान्तं ततश्चरमम्।

मेरे हृदय से विवेक आदि गुण प्रथम चले गये मदन का सर्वस्व हृदय में प्रविष्ट हुआ इसके वाद अन्तिम अपना अन्त हुआ।

केनचिदापादकेन कस्यचिदापादनं सम्भावनम् ॥ २२ ॥

किसी आपादक से किसी का आपादन सम्भावन है ॥ २२ ॥

यथा—बाले! स्युर्यदि जातुचित्सुमनसां माला विमर्दक्षमा
विभ्राणा यदि सौरभं सहजतः स्युर्जातरूपस्रजः।
चैतन्यं यदि वा कदापि विभृयुः श्रीखण्डपाञ्चालिका-
स्तर्ह्यन्येन निरूपितं तव तनुः सादृश्यमासादयेत् ॥

जैसे:—हे बाले! यदि कदाचित् पुष्पमाला विमर्दन के योग्य रहे, स्वभावतः यदि सुगन्ध प्रशस्त वर्णयुक्त माला को धारण किये रहे, चैतन्य यदि श्रीखण्डचन्दन पाञ्चालिका (पंजाब देश में उत्पन्न स्त्री) के शरीर को धारण करे, तब तुम्हारा शरीर अन्य के साथ सादृश्य प्राप्त कर सकता है।

कस्यचिदर्थस्य मिथ्यात्वसिद्धये मिथ्याभूतार्थान्तरोपकल्पनं मिथ्याध्यवसितिः ॥ २३ ॥

किसी अर्थ के मिथ्यात्व की सिद्धि के लिए मिथ्याभूत अर्थ की उप कल्पना ही तो मिथ्याध्यवसिति अलङ्कार होता है ॥ २३ ॥

यथा—[1]गगनतललक्ष्मीकमलपरिमलकमनीयतनुर्मृगाक्षि! पुमान्।
वन्ध्यासुतं प्रति वदेत्तवावलग्नस्य सावयवभावम् ॥

जैसे:—हे मृगाक्षि! गगनतल शोभायमान कमल सुरभि सुन्दर शरीर मृगनेत्रे? यदि पुरुष वन्ध्यापुत्र के प्रति तुम्हारे मध्यगत अवयव भाग के विषय में कहे—तभी अवगत किया जा सकता है। प्रकृत में कटि के सावयवत्व की मिथ्यात्व सिद्धि के लिए वन्ध्यासुत आदि मिथ्याभूत अर्थान्तर कल्पन किया है।

उत्कर्षानुपपादनेऽप्युत्कर्षहेतुत्वकथनं प्रौढोक्तिः ॥ २४ ॥

उत्कर्ष का अनुपपादन रहने पर भी उत्कर्ष हेतुत्व का कथन प्रौढोक्ति है ॥२४॥

---

१. अत्र मध्यगतसावयवत्वस्य मिथ्यात्वसिद्धये वन्ध्यासुतादिमिथ्याभूतार्थान्तर-कल्पनम्।

यथा—शशाङ्कसमवायिभिः शकलितैः कलङ्कोज्झितैः
'कृते सुमुखि ! चत्वरे यदि सरोवरं रोहति ।
ततो भवति पद्मिनी यदि तया समारभ्यते
प्रसूनममुना समं तव मुखं तदाचक्ष्महे ॥[2]

अत्र निमित्तकारणगुणानां कार्य्यगुणे तदुत्कर्षे वानुपपादकत्वेऽपि तदुपपादकत्वोक्तिः ।

जैसे :—हे सुमुखि ! कलङ्क रहित चन्द्रसमवेत अवयवों से निर्मित प्राङ्गण में सरोवर हो और उसमें पद्मिनी हो उस पद्मिनी से प्रसून हो तब तुम्हारे मुख का साम्य उससे कहा जा सकता है ।

निष्कलङ्क चन्द्रखण्ड निमित्त कारण है, उसमें रहने वाला धावल्य आदि गुण कार्यभूत कमलगत शुभ्रता आदि का अथवा उसके अतिशय के हेतु नहीं है फिर भी हेतुत्व की कल्पना की गई है ।

प्रकृत में निमित्त कारण के गुणों का कार्य गुण में उसके उत्कर्ष में उपपादक नहीं हैं फिर भी उपपादकत्व का कथन है ।

कार्यकारणयोरभेदाभिधानं हेतुः ॥ २५ ॥

कार्य और कारण का अभेद कथन हेतु अलङ्कार है ॥ २५ ॥

यथा—आकृष्टिर्हृदयस्य विस्मयततेः सृष्टिर्दृशोर्बन्धनं
प्रोल्लासो मकरध्वजस्य जगतीवामभ्रुवां न्यक्कृतिः ।
उद्रेकः [3]प्रमदस्य विभ्रमभुवो निर्दम्भमुज्जृम्भणं
प्रत्यासत्तिरसौ रसस्य जयति त्रस्यत्कुरङ्गेक्षणा ॥

जैसे :—चित्त का आकर्षण विस्मय विस्तार की सृष्टि है, नेत्रों का बन्धन कामदेव का प्रकृष्ट उल्लास है, एवं पृथिवी में वक्रनेत्रा का तिरस्कार है ।

हर्ष का उद्रेक स्त्रियों की अङ्गचेष्टा-विशेष का शठतापूर्वक विकाश भीत हरिणी के नेत्रवाली जो रस की प्रत्यासत्ति है, वह सब से उत्कृष्ट है ।

हेतुहेतुमद्भाववर्णनं द्वितीयो हेतुः ॥ १ ॥

हेतु और हेतुमद्भाव का कथन द्वितीय हेतु अलङ्कार है ॥ १ ॥

---

१. कृते निर्मिते ।

२. अत्र निष्कलङ्कचन्द्रखण्डानि निमित्तकारणानि तद्‌गता धावल्यादिगुणाः कार्यभूतकमलगतशुभ्रतादेस्तदतिशयस्य वा न हेतवस्तथापि तद्धेतुत्वकल्पनम् ।

३. प्रमदो हर्षः ।

यथा—प्रालेयांशोः कलायामुपहतिमतये दृश्यतावश्यतायां
मालानां कौसुमीनामपि मृदुतरताव्यत्ययप्रत्ययाय ।
अप्रामाण्याय वाण्यास्त्रिदिवमृगदृशां रूपवत्तापरायाः
विस्तारायाद्भूतानामिह भुवि भुवने भाससे भामिनि ! त्वम् ॥

हे भामिनि ! प्रलयकालीन किरण कला के नाश की दशा में दृश्यता के लिये, कुसुम सम्बन्धी मालाओं की कोमलतरता के व्यत्यय के विश्वास के लिए, स्वर्ग की ललनाओं के अतिशय रूपवत्ता की सूचक वाणी के अप्रामाण्य के लिये भुवन के पृथिवी लोक आश्चर्य के विस्तार के लिए तुम हो भासमान हो ।

एकस्यानेकसमवेताभिन्नप्रकारकज्ञानविषयत्ववर्णनमुल्लेखः ॥२६॥

एक का अनेक समवेत भिन्न-भिन्न प्रकार के ज्ञान के विषयत्व का वर्णन उल्लेख अलङ्कार है ॥ २६ ॥

यथा—सङ्केतकुञ्जभवने प्रतिसञ्चरन्ती-
मालोक्य सुभ्रु ! भवतीं गहनान्धकारे ।
चाम्पेयकोरकमयी स्रगिति द्विरेफाः
सौदामिनीति कलयन्ति मुदं मयूराः ॥
अत्र ज्ञानं भ्रमरूपम् ।

हे सुन्दर भौं वाली ! सङ्केत स्थलीय कुञ्ज भवन में घूमती हुई गहन अन्धकार में आपको देखकर चम्पा की कलिकाओं की माला है—यह समझकर भ्रमण करता है, मयूरगण मेघमाला समझ आनन्दपूर्वक अपना शब्द कर रहे हैं । यह ज्ञान भ्रमात्मक है ।

– प्रमारूपं यथा—

श्रोत्रेण कोकिलवधूकलकूजितेति घ्राणेन भासुरसरोरुहसौरभेति ।
राजीवरम्यनयने ! रसनेन तावद्विज्ञायसे ननु सुधामधुराधरेति ॥

प्रमात्मक ज्ञान यथा :—

हे कमल के समान रमणीयनेत्रवाली ! कान से कोकिलाओं के कलरव के समान मधुर शब्द श्रवण से नासिका से कान्तिमान् कमल सौरभ के समान गन्ध के आस्वादन से ऐसा ज्ञात होता है कि तुम सुधा के मधुर अधर वाली हो ।

एकस्याप्येकवृत्त्यनेकप्रकारकज्ञानविषत्ववर्णनमपर उल्लेखः ॥ १ ॥

एक का एक में रहने वाले अनेक प्रकार के ज्ञान विषयता का वर्णन दूसरा उल्लेख है ॥ १ ॥

यथा—[1]'चित्राङ्गदा भुजयुगे तनुसन्निवेशे
पाञ्चालिका दृशि पृषत्यसि वाचि सत्या।
रोहिण्यसि त्वमधरे विनता विनीतौ
छाया मनोभवविकारमहानिदाघे॥

यथा—चित्राङ्गदा

तुम विचित्र अङ्गवाली (केयूर धारण करने वाली) रमणी हो, जिसकी दोनों भुजाओं की विरल स्थिति है, तथा विस्तृत ललाट वाली (द्रौपदी) हो, हरिणी जैसी नेत्र की पुतलियां हैं और सत्य बोलने वाली (सत्यभामा) हो, जिसके अधर रक्तवर्ण हैं (रोहिणी हो), विनम्रतायुक्त (गरुड की माँ विनता) हो। कामवेग के उद्दीप्त होने पर वेग को शान्त करने वाली (निदाघ में छाया) प्रिया हो।

साम्याभिप्रायके वाक्यद्वये एकधर्मोपादानं प्रतिवस्तूपमा ॥२७॥

साम्य अभिप्रायवाले दो वाक्यो में एक धर्म का उपादान प्रतिप्रस्तूपमा है ॥२७॥

यथा—ईर्ष्याकषायितं तव वदनमिदं मां धिनोत्येव।
इन्दुरुदयारुणिम्ना भिन्नोऽपि मुदे चकोराणाम्॥

अत्र धिवि प्रीणने इति धातुपाठात् धिनोतीति तिङन्तेन, मुदा इत्यनेन च प्रीतिजनकत्वरूपैकधर्मोक्तिः।

जैसे :—तुम्हारा ईर्ष्या से दिग्ध यह मुख मुझे प्रसन्न ही कर रहा है, उदय कालिक अरुणिमा से भिन्न भी चन्द्रमा चकोर की प्रसन्नता के लिए ही होता है।

यहाँ "धिवि प्रीणने" इस धातुपाठ से :'धिनोति' इस तिङन्त पद से और मुदा इस पद से प्रीतिजनकत्वरूप एक धर्मोक्ति है।

तत्रैव बिम्बप्रतिबिम्बभावेन भिन्नधर्मोपादानं दृष्टान्तः ॥ २८ ॥

समान अभिप्रायवाले वाक्य में बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव से भिन्न का उपादान दृष्टान्त है ॥ २८ ॥

यथा—भुवनेषु भवन्तु भव्यभेदा नयनासेचनकं त्वसि त्वमेव।
कुसुमानि वहन्तु वीरुधोऽन्या नलिनी केलिविलासभूरलीनाम्॥

---

१. श्लेषसङ्कीर्णमिदम्। चित्राङ्गदा काचिदङ्गना विचित्रकेयूरवती च। पाञ्चालिका द्रौपदी पुत्तलिका च। अथ वा पञ्चमेव पाञ्चं विस्तृतम् अलिकं ललाटं यस्याः सा, पचि विस्तारे इत्यस्य पचाद्यजन्तस्य स्वार्थेऽण्। पृषती हरिणी। सत्या सत्यभामा ऋता च सत्यभाषिणीति यावत्। रोहिणी वसुदेवपत्नी रक्तवर्णा च। विनता गरुडप्रसूः विनयवती च। छाया सूर्यप्रिया अनातपश्च।

अत्र नयनासेचनकत्वं केलिभूमित्वं चेति भिन्नधर्मोक्तिः।

जैसे :—पृथ्वी पर सुन्दरियों का समुदाय हुआ करे किन्तु नयनों को वार-वार सुख देनेवाली तुम्ही हो। अन्य वृक्ष कुसुम को धारण भले ही करें किन्तु भ्रमरों के लिए नलिनी ही केलि-क्रीडा की भूमि है।

यहाँ नेत्र को भलीभाँति सिञ्चन करना और केलि-भूमित्व ये भिन्न धर्म कहे गये है।

प्रकृताप्रकृतानामेकधर्मान्वयो दीपकम् ॥ २९ ॥

प्रकृत और अप्रकृत का एक धर्म में अन्वय दीपक अलङ्कार है ॥ २९ ॥

यथा—'अतिसौरभवल्लिभिः पिकानां नलिनीभिश्च कलाः शिलीमुखानाम्।
महिलाभिरनाविला विलासा बहुवेलं हि विलक्षणा ध्रियन्ते ॥

अत्र महिलाविलासाः प्रकृताः (कोकिलानां भ्रमराणां च कला अप्राकृताः) तेषां कर्मत्वेन ध्रियन्ते इत्येकक्रियान्वयः।

आम्रवृक्ष की मञ्जरियों से कोकिलों का कमलिनियों से भ्रमरों की कलायें, रमणियों से दोष शून्य विलास दीर्घकाल तक विक्षलण स्वरूप धारण करते हैं।

यहाँ महिलाओं का विलास प्रस्तुत है, कोकिल और भ्रमरों की कला अप्रस्तुत है, इनको कर्मत्व रूप से ध्रियन्ते इस एक क्रिया में अन्वय होता है।

एककारकस्यानेकक्रियान्वयः क्रियादीपकम् ॥ १ ॥

एक कारक का अनेक क्रियाओं में अन्वय क्रियादीपक है ॥ १ ॥

यथा—त्वामात्मीयविहारसौधसविधावस्थायिरथ्यामुख—
प्रत्यासत्तिभृता पथा विधिवशादालोक्य सञ्चारिणम्।
तत्र प्रक्षिपतीक्षणं वितनुते पाणौ कपोलस्थलीं
ध्यायत्युत्पुलकायते शिथिलतामायाति मुह्यत्यपि ॥

अपने विहार प्रसाद के समीप स्थित गली के निकटवर्ती मार्ग से घूमते हुये तुमको भाग्यवश देखकर वहाँ नेत्र का प्रक्षेप किया हाथ कपोल स्थल पर रखने का ध्यान करते हुए रोमाञ्च होता है, शिथिलता आती है एवं मोह उत्पन्न होता है।

प्रकृत में प्रक्षिपति वितनुते पुलकायते मुह्यति आदि अनेक क्रियायों में अन्वय होने से क्रियादीपक अलङ्कार है।

रूपान्तरेण पूर्वोक्तस्य कारकस्य उत्तरत्रान्यरूपेणान्वयो मालादीपकम् ॥ २ ॥

---

१. अतिसौरभः सहकारः।

उस कारक का पूर्व से भिन्न रूप से आगे अन्य रूप से अन्वय होना माला दीपक है ॥ २ ॥

यथा—नलिनी केलिसरस्या तयाम्बुजं तेन मकरन्दः ।
तेन मरुत्तेनाङ्गं विरहिण्यास्तेन लभ्यते लाभः ॥
पूर्वं कर्मत्वेनान्विताया नलिन्या उत्तरत्र कर्तृत्वेनान्वयः ।

केलि सरोवर से नलिनी, नलिनी से अम्बुज, उससे मकरन्द, उससे वायु, उससे विरहिणी का अङ्ग उससे लाभ प्राप्त होता है ।

पूर्व में कर्मत्व से अन्वित नलिनी का आगे कर्तृत्व रूप से अन्वय होता है ।

क्रियाया द्विरभिधानमावृत्तिः (त्तिदीपकम्) ॥ ३० ॥

क्रिया का दो बार अभिधान आवृत्ति दीपक है ॥ ३० ॥

शब्दावृत्तिर्यथा—
जलदाः प्रचलाकिनां कुलानि[1] स्तनितैरुन्मदयन्ति सान्द्रमन्द्रैः ।
इषवोऽनिमिषध्वजस्य चामी[2] हृदयान्युन्मदयन्ति हन्त यूनाम् ॥
उन्मदानि कुर्वन्ति हर्षयन्ति चेत्यर्थभेदः ।

सान्द्रमन्द्र गर्जन से मयूरों के समूहों को उन्मत्त करता है । मीनध्वज (काम) के वाणों से युवकों के हृदय को उन्मत्त करता है । उन्मत्त करता है या आनन्दित करता है यह अर्थ भेद है ।

अर्थावृत्तिर्यथा—
पिदधति करभोरु ! पुष्करान्तं[3] कलय कुलानि मुदा वलाहकानाम् ।
भुवमपि तिरयन्ति सातिरेकं मलिनतमानि तमालकाननानि ॥

अर्थ की आवृत्ति यथा—

हे करभोरु ? मेघसमूह आकाश प्रदेश को तिरोहित करे मलिनतम तमालवन अतिशय पृथिवी को ढाक दे, तुम आनन्द से शब्द करो ।

उभयावृत्तिर्यथा—
विकसति कदम्बकुसुमे मधुव्रता मधु धयन्त्वधुना ।
सहृदयधुर्या मधुरं धयन्ति बिम्बाधरं वधूनाम् ॥

---

१. प्रचलाकिनो मयूराः ।
२. अनिर्मिषध्वजः मीनध्वजः काम इत्यर्थः ।
३. पुष्करान्तम् आकाशप्रदेशम् ।

दोनों की आवृत्ति यथा—

कदम्बकुसुम के विकसित होने पर भ्रमर इस समय मधु का पान कर रहे हैं, सहृदयधुरीणा वधुओं के बिम्बाधर का माधुर्य पान करते हैं।

प्रकृतानामप्रकृतानामेव वा एकधर्मान्वयस्तुल्ययोगिता ॥ ३१ ॥

प्रस्तुत या अप्रस्तुत का एक धर्म में अन्वय तुल्ययोगिता अलङ्कार है ॥ ३१ ॥

यथा—धाराधरे गगनसीममलीमसत्वसम्पादके समभिवर्षति वारिजाक्षि ! ।
कल्लोलिनीषु कुसुमेषु च केतकीनामध्वन्यहृत्सु च विभाति रजोऽभियुक्तिः ॥

अत्र वर्षावर्णने प्रकृतानां केतकादीनां रजोरूपैकधर्मसम्बन्धः। अप्रकृतानां यथा—

अधरकरचरणवृत्तिं तरुणि ! तवोतपश्यतामरुणिमानम् ।
हिङ्गुललोहितकमहारजनानां हीयते महिमा ॥

हे कमलनेत्रे ! गगन पर्यन्त कालिमा सम्पादक मेघ के वर्षण करने पर केतकी के तरङ्गों से युक्त कुसुमों में और मार्ग में अरसिकों में धुली कण का अभियोग शोभायमान होते हैं।

वर्षा-वर्णन में प्राकृत केतकादि रजोरूप एक धर्म का सम्बन्ध है।

अप्राकृत यथा—

हे तरुणि ! तुम्हारे अधर कर चरण में वर्तमान लालिमा को देखकर, हिंगुल, दाडिम पुष्पविशेष की महिमा नष्ट हो रही है।

सपक्षविपक्षयोर्वृत्तिसामान्यमन्या तुल्ययोगिता ॥ १ ॥

सपक्ष और विपक्ष की वृत्ति का सामान्य वर्णन अपर तुल्ययोगिता है ॥ १ ॥

यथा—[1]ज्योत्स्नारसानुभूतिप्रोल्लसदङ्गाररुचिभाजः ।
हिमदीधितिना विहिताः सुतनु ! चकोराश्च चक्रवाकाश्च ॥

हे सुन्दरगात्रवाली ! चकोरों का चांदनी रस के आस्वादन में स्वाभाविक प्रवृत्ति होने पर भी अग्निकण के आस्वादन की इच्छा होती है। अर्थात् चक्रवाकों की विरह के कारण ज्योत्स्ना रस में वह्नि बुद्धि है, क्योंकि, ज्योत्स्ना सन्ताप जनक है।

उपमानादुपमेयस्योत्कर्षवर्णनं व्यतिरेकः ॥ ३२ ॥

उपमान से उपमेय की उत्कृष्टता का वर्णन व्यतिरेक है ॥ ३२ ॥

---

१. अत्र चक्रवाकाणां विरहितया ज्योत्स्नारसे वह्निबुद्धिः सन्तापजनकत्वात्, चकोराणां ज्योत्स्नारसास्वादने सत्यपि स्वाभाविकी स्फुलिङ्गास्वादनेच्छा जायत इति तात्पर्यं बोध्यम्।

स च चतुर्विंशतिभेदः। शाब्दे साम्ये चत्वारो भेदाः। उत्कर्षापकर्षहेतूक्तौ उत्कर्षमात्रहेतूक्तौ. अपकर्षमात्रहेतूक्तौ, उभयमात्रहेत्वनुक्तौ चेति। एवमार्थे साम्ये, आक्षिप्ते चेति द्वादशभेदाः। तेषां श्लिष्टत्वे द्वादशेति मिलित्वा चतुर्विंशतिभेदाः।

वह चौबीस प्रकार का है। शब्द के साम्य से चार भेद। उत्कर्ष और अपकर्ष के साधन के कथन से, अपकर्ष साधन के कथन से, और उभय मात्र हेतु के न कहने से; इसी प्रकार अर्थ के साम्य में और आक्षिप्त के भेद से बारह भेद हैं। इनके भी श्लिष्ट के आधार पर बारह, इस प्रकार चौबीस भेद हैं।

तत्र शाब्दे साम्ये यथा—

त्वद्वक्त्रे रुचिरब्जवत्पुनरवच्छिन्नाऽनवच्छिन्नता-
भिन्ना धूमलतेव भाति कबरी भूयोऽभिरामा दृशोः।
श्रीरोष्ठस्य च पद्मरागदलवत्तत्सौकुमार्योज्झितं
किञ्चित्कालिकवक्रतां न वहति भ्रूश्चापलेखा यथा॥

शब्द साम्य में यथा—

तुम्हारे मुख में कमल के समान सतत कान्ति वर्तमान है। विच्छेदरहित धूमलता के समान पुनः नेत्र के लिए अतिशय अभिराम केश गुच्छ विराजमान है; ओष्ठ की शोभा पद्मराग दल के समान उसके सौकुमार्य से रहित और अपरिवार के समान कालिकवक्रता सामयिक वाणरूपी भौओं की रेखा के समान धारण नहीं करते हैं।

आर्थे साम्ये यथा—

दृश्यं दर्पणवत्कपोलफलकं प्रातः शुभं सर्वदा
मुक्ताभिः सदृशा लसन्ति दशना रन्ध्रानुबन्धत्यजः॥
कुम्भेनापि पयोधरावुपमितावन्तः स शून्यः परं
रम्भास्तम्भवदूरुयुग्ममहिमैकाश्लेषयोग्यं तु तत्॥

आर्थ साम्य में यथा—

कपोल फलक सदा शुभ प्रातः दर्पण के समान दृश्य है, मुक्ता के समान छिद्र शून्य दशन पंक्ति शोभायमान है, कुम्भ के समान पयोधर किन्तु अन्दर से वे शून्य है। कदली के स्तम्भ के समान उरु युगल हैं, किन्तु वह हिम युक्त है।

आक्षिप्ते साम्ये यथा—

नाभिः सुभ्रु! सरसनाभिरसकौ मन्द्रा सदा जातु त-
द्रोमालिर्यमुनामसूयितवती नो वक्रतामञ्चति।
मध्यं व्योमविरोधि दृश्यपदवीं तज्जातु नोद्गाहते
पाणिः पल्लवमभ्यसूयति परं राजीवसंयोगभाक्॥

आक्षिप्त में साम्य यथा—

हे सुभ्रु ! तुम्हारी नाभि सरोवर और नाभि से उत्पन्न सरस मन्द्राचल स्वरूप है, यमुना को निन्दित करती हुई रोमपंक्ति हमारे लिए वक्रता को प्राप्त कर रही है, मध्यमगव्योम विरोधी दृश्य भूत है, किन्तु उद्गाहन नहीं करते हैं, कमल संयोग भागी हस्त पल्लव को निन्दित कर रहे हैं। इसी क्रम से बारह श्लिष्टों के भेद हैं।

एतत्क्रमेणैव द्वादश श्लिष्टभेदाः। यथा—

राजीवे इव ते पदे विसदृशी ते दृश्यभूते इमे
मृद्व्यस्त्वङ्गुलयोऽतिलोहितमणिज्योतिःशलाका इव।
तिस्रोऽमूर्वलयोऽपि वीचय इव प्रायेण ते नीचगाः
श्रीरुच्चैर्बिसवद्रुचिर्नियमतो दोष्प्रोचनोष्प्रोदये ॥ (?)

कमलों के समान तुम्हारे दोनों चरण हैं दृश्यभूत होने से विसदृश हैं; कोमल अङ्गुलियाँ अतिशय लोहितमणि की शलाका के समान हैं, ये तीन वलय (त्रिवली) तरङ्ग के समान हैं और प्रायः निम्नगामी हैं, उच्च कमल तन्तु लक्ष्मी की कान्ति नियमतः रागद्वेष मोहात्मक हैं ?

कण्ठः कम्बुसमो विहाय हृदयं तस्यास्य सङ्गृह्यगो–(?)
नासेयं तिलपुष्पवद्दधति नो मालिन्यमस्याः फलम्।
भालं चेन्दुदलोपमं भवति तद्दृश्यं तु पक्षान्तरे
दृक्कञ्जप्रतिमा शिलीमुखततैस्तादात्म्यमस्यां पुनः॥

कण्ठ कम्बु के समान हैं, वह हृदय को छोड़कर मुख के सम्राहक के रूप में गमनशील है, इसकी नासिका तिल पुष्प के समान धारण किये हैं, इसका फल मालिन्य है। भाल चन्द्रदल के समान है, किन्तु वह एक ही पक्ष में दृश्य होता है नेत्रजन्य प्रतिमा भ्रमर समूह से तादात्म्यापन्न हैं।

व्याहारा विहसन्ति कोकिलकलान्ध्वन्यात्मवर्णा ध्वनीन्
कौमुद्या मदहृत्स्मितं बहुलमप्यासाद्य विद्योतते।
दृग्भङ्गी जलजस्रजां विजयिनी साकूतभावत्यजां
माधुर्य्यं विरुणद्धि सुन्दरि ! सुधां दृष्ट्या प्रपेया तनुः॥

हे सुन्दरि ! वचन हास्य प्रयुक्त हैं, कोकिल कलकल ध्वनि के समान वर्ण युक्त हैं, चाँदनी के मद के समान सुन्दर स्मित बहुधा देदीप्यमान है, दृग्भङ्गी कमल माला की विजयिनी है, साकूतभाव रहित सुधा को माधुर्य्य में रोकती है, अतः दृष्टि से पान योग्य है।

अभिधातुमिष्टस्यापि विशेषलाभार्थो निषेध आक्षेपः ॥ ३३ ॥

अभिधान करने के लिए इष्ट का भी विशेष लाभ के लिए निषेध आक्षेप है ॥ ३३ ॥

स द्विविधः। वक्ष्यमाणविषय उक्तविषयश्चेति। आद्यो यथा—

कुमुदमिन्दति माद्यति कौमुदी वहति गन्धवहो मलयोद्भवः।
किमथवाभिहितैः क्रियते हितैः सहृदयैरहितग्रहिले जने ॥

चन्द्रमा देदीप्यमान चन्द्रिका का मद सम्पन्न कर रही है, मलयोद्भव वायु बह रहा है अथवा इस कथन से हितचिन्तक सहृदयों के इस मन से अहित करने वाले मनुष्य को क्या लाभ हैं।

अत्रैतादृशसमये मानं मुञ्चेति अभिधित्सितमेव प्रतिषिद्धम्। तथा चावश्यं मानस्त्याज्य इति व्यङ्ग्यम्।

इस समय मान को छोड़ों इस अभिधान की इच्छा का प्रतिषेध हो रहा है, अतः मान को अवश्य ही छोड़ देना चाहिए यह व्यङ्ग्य है।

द्वितीयो यथा—

मनो मैवं कार्षीरतिपरुषितं मानिनि ! रुषा
दृशौ मैवं नैषीरपि कलुषतामश्रुपृषतैः ॥
करेण स्प्राक्षीर्मा मृदिततिलकं गण्डफलकं
कृतं वा संवादैः सुहृदभिहितानीहितहृदाम् ॥[1]

द्वितीय जैसे—

हे मानिनि ! क्रोध से मन को अतिशय पौरुष दृप्त नहीं करो, अश्रु विन्दुओं से नेत्रों को कालुष्य सम्पन्न मत करो, म्लान तिलकवाले कपोलों को हस्त से स्पर्श मत करो, अनिष्ट बुद्धि वालों के लिए प्रिय संवादों से क्या लाभ है।

अत्रोक्त्वापि तत्प्रतिषेधः कृतः।[2]

यहाँ कहकर भी उसका निषेध किया है। इस प्रसङ्ग में जो कहने का उपक्रम रूप पूर्व अर्थ का निषेध है वह वक्ष्यमाण विषय है। जो कहकर उस कथन का वैयर्थ्य सूचन है, वह उक्त विषय है, इस प्रकार आक्षेप दो प्रकार के हैं।

---

१. मित्रोक्तेषु अनिष्टधियामित्यर्थः।

२. अत्र 'यत्र वक्तुमुपक्रान्तः पूर्वार्थो निषिध्यते स वक्ष्यमाणविषयः। यत्र तु उक्त्वा तद्वचनवैयर्थ्यमुच्यते स उक्तविषय' इति द्विविधस्याक्षेपस्य स्वरूपं बोध्यम्।

[1]उपमेयेनोपमानवैयर्थ्योक्तिरन्य आक्षेपः ॥ १ ॥

उपमेय से उपमान के वैयर्थ्य का कथन अन्य आक्षेप है ॥ १ ॥

यथा—वैफल्याकलिता बलाहककला तावत्कलापे स्थिते
केशानां सति ते मुखे कुमुदिनीकान्ते वृथैक्यं ततः ॥
व्याहारेषु पिकाङ्गनाकलकलः कोलाहलः केवलं
पानाच्चेन्मदकृत्कलेवरलता हालापि हालाहलम् ॥

जैसे:—मयूर के रहने में मेघ के शब्द की विफलता हो जाती है, उसके मुख पर केशों के रहने पर चन्द्र से उसका साम्य प्रदर्शन व्यर्थ है। शब्दों में कोकिलाकी केका वाणी केवल कोलाहल मात्र है, मदमत्तकलेवरलता पान से मद्य भी विष मात्र है। इसमें एक के द्वारा दूसरे का वैयर्थ्य प्रतिपादन किया गया है।

अर्थान्तरतात्पर्यको निषेधः पर आक्षेपः ॥ २ ॥

अन्य अर्थ में तात्पर्य से निषध अन्य आक्षेप है ॥ २ ॥

यथा—कृतोत्साहां किञ्चिद्विषयकविजिज्ञापयिषया
तदीयामालिं मा गुणविधिनिषेधात्स्म जगणः ॥
भवत्साक्षात्काराधिकरणमुपक्रम्य समयं
धियां धारा तस्यां विषयमपरं नो विषहते ।

जैसे :—कुछ विषय ज्ञान कराने की इच्छा से, उत्साह सम्पन्न उसकी सखी के गुण के वर्णन के निषेध करने से जगण हो गई हैं। तुम्हारे साक्षात्कार के अधिकरण समय को प्राप्त कर बुद्धि की धारा अन्य विषय को नहीं सहती है।

अत्र तत्सखीत्वेन ज्ञायमानायास्तत्सखीत्वेन ज्ञाननिषेधो बाधितः सन् नाहं तत्पक्षपातया ब्रवीमीत्यर्थे पर्यवसन्नः ।

यहाँ उसकी सखी के रूप में जानी गई को उसका सखीत्व के रूप के ज्ञान का निषेध बाधित होकर मैं उसमें पक्षपात के कारण नहीं बोल रही हूँ—इस अर्थ में पर्यवसान लाभ करता है।

निषेधफलको विधिराक्षेपान्तरम् ॥ ३ ॥

निषेधफलक विधि अन्य आक्षेप है ॥ ३ ॥

---

१. काव्यप्रकाशकार इममाक्षेपभेदम् उपमानाक्षेपरूपप्रतीपभेदेऽन्तरयामास ।

यथा—ऋजुहृदयया मया तव मृष्यन्त्या तावदपराधान् ॥
दृष्टान्तः स्वयमेव स्वहस्तितस्तत्सजातीये ॥

अत्र पूर्ववदन्यानप्यपराधानहं सहिष्ये अतो मत्प्रातिकूल्यं यथेष्टं क्रियतामिति विधिः स्पष्टः। अद्यपर्यन्तं सहनेऽप्यतः परं न सहिष्ये तस्मादपराधं मा कार्षीरिति तात्पर्य्यम् ॥

कोमल हृदय मैंने तुम्हारे अपराधों को क्षमा किया, उसके सजातीय के लिए स्वयं दृष्टान्त है। इसका आशय व्यक्त करते हुए कहा है कि पूर्व के समान अन्य अपराधों को सहन करूँगी, इसलिए मेरी प्रतिकूलता इच्छा के अनुसार करे यह विधि स्पष्ट है, किन्तु, इसका तात्पर्य यह है कि आज तक सहन करने पर भी इसके बाद सहन न करूँगी, अतः अपराध मत करो।

विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्विभावना ॥ ३४ ॥

विना हेतु के कार्य की उत्पत्ति विभावना है ॥ ३४ ॥

सा च द्विविधा। उक्तानिमित्ताऽनुक्तनिमित्ता च। आद्या यथा—

यह विभावना दो प्रकार की है। उक्त निमित्ता और अनुक्तनिमित्ता। उक्त निमित्ता, जैसे:—

नो तावन्मलयानिलेन तरलायन्ते लवङ्गीलता
माकन्दे मुकुलाकुले कलकलं कुर्वन्ति नो कोकिलाः ॥
नो वा चम्पकसम्पदा वनभुवः सम्पन्नशम्पान्वया[1]
जातं प्रोषितभर्तृकाजनमनश्चैतन्यमन्यादृशम् ॥

मलय पवन के द्वारा लवङ्ग लता चञ्चल नहीं की जा रही है। मुकुल से परिव्याप्त आम्र पर कोकिल शब्द नहीं कर रहे हैं, चम्पक पुष्प की श्री से वनभूमि विद्युन्मय नहीं है, प्रोषितभर्तृक के मन में अन्य प्रकार का चैतन्य आविर्भूत है।

अत्र वसन्तानाविर्भावेऽपि विरहिणीनां मनोविकार उक्तः। विरहरूपं तन्निमित्तं च प्रोषितपदेनोपात्तम्। द्वितीया यथा—

इस पद्य के द्वारा वसन्त के आविर्भाव के विना भी विरहिणी के मनोविकार को कहा गया है। उसका कारण प्रोषित पति पद से कहा गया है। अतः उक्त निमित्ता विभावना है।

अत्र विरहहेतुत्वमुक्तिः।

अतिरोधतिरोहिता दृशोः श्रीरविभक्तावयवं कृशं शरीरम् ॥
अपरागपराहतौ प्रियाया प्रतिभातः परिपाण्डुरौ कपोलौ ॥

---

१. शम्पा विद्युत्। शम्पा शतहृदा हादिन्यैरावत्यः क्षणप्रभाः। इत्यमरः

नेत्रों की कान्ति तिरोहित हो गई है, शरीर कृश है, राग शून्य प्रिया के सर्वथा पीत कपोल भान हो रहे हैं। इस अवस्था का कारण विरह रूप हेतु उक्त नहीं है।

हेतुसत्त्वेऽपि कार्यानुक्तिर्विशेषोक्तिः ॥ ३५ ॥

हेतु के रहने पर भी कार्य का न कहना विशेषोक्ति है।

यथा—व्याहारानवहेलयस्यपि वयस्यानां वयस्याग्रहा-[1]
न्नो गृह्णासि गिरः प्रियस्य कियतीर्निर्मायमायस्यतः ॥
एते चेतसि केतकीसुमनसामामोदतो मेदुरा
उन्मादं पवना अपीह न मनाक्तन्वन्ति तन्वङ्गि! ते ॥

युवावस्था में वयस्यों के व्यवहारों की उपेक्षा करती हो, आगत प्रिय के वचन का भी ध्यान नहीं देती हो, पवन केतकी पुष्प के आमोद से स्निग्ध ये पवन भी हे तन्वङ्गि! तुझे आकृष्ट नहीं कर रहे हैं।

अत्र प्रस्तुतहेतुसत्त्वेऽपि तदनुत्पत्तिनिर्देशः।

यहाँ प्रस्तुत हेतु रहने पर भी उसकी अनुपपत्ति का निर्देश है।

क्रमेण पदार्थान्वयो यथासङ्ख्यम् ॥ ३६ ॥

क्रम से पदार्थों का अन्वय यथा[1]सङ्ख्य अलङ्कार है ॥ ३६ ॥

यथा—युवत्वे बालत्वेऽप्युपजिगमिषानिर्जिगमिषे
स्तने मध्ये वास्या महिमतनिमानौ निवसतः ॥
गिरिश्रोणीभागेऽपि च मधुरभारातिगुरुते
दृशोर्भङ्गे चेतस्यपि कुटिलताविभ्रमभरौ ॥

युवावस्था एवं बाल्यावस्था में भी सभी के जाने की इच्छा और जाने की इच्छा का अभाव, इसके स्तन के मध्य में स्थूलता और कृशता निवास करती है। गिरि के कटि भाग में मधुर भार अतिशय गुरुता प्राप्त है। नेत्रों की भङ्गिमा में और चित्त में भी कुटिलता और विभ्रम का धारण है।

सामान्यविशेषाभ्यां विशेषसामान्यसमर्थनमर्थान्तरन्यासः ॥३७॥

सामान्य और विशेष से विशेष और सामान्य का समर्थन अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ॥ ३७ ॥

---

१. वयसि यौवने।

प्रत्येकं द्विधा। साधर्म्यवैधर्म्यभेदात्। आद्यं साधर्म्येण यथा—

ओजायते यथेन्दुर्ग्लायति तस्यास्तथा वदनम्॥
न खलु विपक्षसमृद्धौ परितोषं यान्त्यपि विपत्स्थाः[1]॥

प्रत्येक दो प्रकार का है, साधर्म्य और वैधर्म्य के भेद से, प्रथम सादृश्य से; यथा :—जैसे-जैसे चन्द्रमा दीप्ति धारण करता है, वैसे ही उसका मुख म्लान होता है। विपत्ति में भी विपक्ष की समृद्धि होने पर परितोष नहीं प्राप्त करते हैं।

तदेव वैधर्म्येण यथा—

यौवनविहितविमर्दनमपि बालत्वं[2] कुरङ्गनयनायाः।
बालेष्वेवावर्त्तत चिराय साधारणे दुरासम्॥

वही वैधर्म्य से यथा :—

मृग-शावक-नयना का यौवन से विमर्दन किया गया भी बालत्व, केशों में ही चिरकाल तक रहा, क्योंकि अपने और अन्य स्थानों में रहना कठिन रहता है।

अत्र तुरीयचरणस्य विपर्ययः-स्वासाधारणविषये चिरं स्थातुं शक्यम् इति तेन पूर्वसमाधानम्।

बालत्व शैशव एवं केश में रहने वाली जाति है, यौवन प्रागभाव का अधिकरण उसके साधारण शरीर में स्थित रहने पर भी यौवन के आगमन पर वहाँ रहने में असमर्थ होने पर भी अपने असाधारण आश्रम में ही चिरकाल पर्यन्त बालत्व अवस्थित रहा; क्योंकि अपने और अन्य के साधारण विषय में रहना दुष्कर होता है।

प्रकृत में चतुर्थ चरण का विपर्यय है, अपने असाधारण विषय में ही चिरकाल तक वस्तु रहने में समर्थ होती है, इससे पूर्व का समाधान हो जाता है।

द्वितीयं साधर्म्येण यथा—

महतामुपसङ्ग्रहेण दोषा अपि सम्बिभ्रति भूरिभव्यभावम्।
कुचसीमनि मत्तकाशिनीनां कठिनत्वं कलयन्ति कौतुकाय॥

द्वितीय साधर्म्य से, जैसे :—

अच्छे व्यक्तियों के समीप संगृहीत दोष भी कल्याण भाव को प्राप्त करते हैं, कुच के समीप मत्त स्त्रियों की कठिनता भी कौतक का आधान करती है।

---

१. विपदापन्नेऽपि परितोषः इति पाठान्तरम्।

२. बालत्वं शैशवं केशवृत्तिजातिश्च। यौवनप्रागभावाधिकरणतया तत्साधारणे तस्याः शरीरे स्थितमपि यौवनागमे तत्र स्थातुमसमर्थं स्वासाधारणाश्रयेषु बालेष्वेव बालत्वं स्थितम्; यतः स्वपरसाधारणविषये आसितुं दुष्करं भवतीत्यर्थः।

तदेव वैधर्म्येण यथा—

अधरे तव माधुरीनिधाने हृदयं तस्य तदेव सानुबन्धम् ।
विषयेषु निसर्गसुन्दरेषु प्रवणत्वं न नवीनमिन्द्रियाणाम् ॥

वही वैधर्म्य से । जैसे :—

तुम्हारे अधरद्वय माधुर्य्य के आकर हैं और हृदय उससे सदा सम्बद्ध है स्वभावतः सुन्दर विषयों में इन्द्रियों की प्रवणता कोई नवीन नहीं है ।

अत्रोत्तरार्द्धस्य विपर्यय इन्द्रियाणां विषयाभिमुख्यं स्वाभाविकमिति तेन पूर्वसमाधानम् ।

यहाँ उत्तरार्द्ध का विपर्यय है, इन्द्रियों की विषयों की अभिमुखता स्वाभाविक है, इससे पूर्व का समाधान होता है ।

विशेषसमर्थकस्य सामान्यस्य विशेषान्तरेण समर्थनं विकस्वरः ।३८।

विशेष के समर्थक सामान्य का विशेषान्तर से समर्थन विकस्वर है ।। ३८ ।।

यथा—जातच्छायतया कपोलभुवि ते वाञ्छन्मुखस्य श्रियं
कर्णालम्बितकेतकक्रकचभाक् शीतद्युतिर्भिद्यते ।
आकाङ्क्षा किल बाधितेऽपि विषये भाति प्रयासैकभू-
र्बालस्येव सुधाकरस्य समुपादित्सा मुहुः पाणिना ॥

जैसे :—तुम्हारे उसकी छाया (प्रतिविम्ब) से मुख की कान्ति को चाहता हुआ, कर्ण तक आलम्बित केश रूपी केतकी में काँटे से चन्द्रमा का द्वैधीभाव हो रहा है, किसी बालक को हाथ से चन्द्रमा को ग्रहण की इच्छा के समान बाधित विषय में भी प्रयासजन्य आकांक्षा रहती है ।

आपाताद्विरोधभानं विरोधाभासः ॥ ३९ ॥

आपात दृष्टि से विरोध का भान विरोधाभास है ।। ३९ ।।

स दशविधः । जातेः जातिगुणक्रियाद्रव्यैः, गुणस्य गुणक्रियाद्रव्यैः, क्रियायाः क्रियाद्रव्याभ्याम् , द्रव्यस्य द्रव्येणेति ।

वह दश प्रकार का है । जाति का जाति, गुण क्रिया और द्रव्यों के भेद से गुण का गुण, क्रिया और द्रव्य के भेद से, क्रिया का क्रिया और द्रव्य के भेद से द्रव्य का द्रव्य के भेद से ।

यथा—कर्पूरं वह्निरुष्णो मरुदपि तपनं चन्दनं क्ष्वेड इन्दुः
सा श्यामा पाण्डुरुच्छुष्यति सजलमुखं मन्मथोऽप्यप्रमेयः ।
चेतः शून्यायते चोल्लिखति च किमपि प्रेक्ष्यसे सर्वतस्त्वं
वैदेही सापि जाता विरहकपटतो रावणेनोपरुद्धा ॥

जैसे—कपूर वह्नि, वायु उष्ण, चन्दन तपन, इन्दु विष श्यामा पाण्डु, सजलमुख शुष्क, मन्मथ भी अप्रमेय, चित्त शून्यता को प्राप्त करता है, कुछ लिख रही हो और चतुर्दिक् तुम देख रही हो मानो विरहरूपी कपट से रावण से उपरुद्ध वैदेही के समान वह थी।

अत्र कर्पूरं वह्निरिति जात्योर्विरोधः। मरुदुष्ण इति जातिगुणयोः। चन्दनं तपनमिति जातिक्रिययोः। इन्दुर्विषमिति जातिद्रव्ययोः। एककाले चन्द्रव्यक्तिभेदाभावेन चन्द्रत्वस्यात्र जातित्वेनाभिमतत्वात्। एवमग्रेऽपि बोध्यम्। श्यामा पाण्डुरिति गुणयोः। अश्रुजलसंयोगवन्मुखं शुष्यतीति गुणक्रिययोः।[1] त्वं सर्वत्र दृश्यस इति क्रियाद्रव्ययोः। सापि वैदेहीतिद्रव्ययोरिति विवेकः। अपिशब्दत्वे शाब्दो विरोधः तदभावे त्वार्थ इति सिद्धान्तः।

इसमें कपूर वह्नि यह जातियों का विरोध हैं, वायु उष्ण यह जाति और गुण का विरोध है चन्दन तपन यह जाति और क्रिया का विरोध है, इन्दु विष यह जाति और द्रव्य का विरोध है। एक समय में चन्द्र-व्यक्ति भेद न रहने पर भी चन्द्रत्व यहाँ जातित्व रूप से अभिमत है। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए। श्यामा पाण्डु यह गुणों में, अश्रुजल संयोग युक्त मुख सूख रहा है—यह गुण क्रिया में, मन्मथ भी अप्रमेय—यहाँ गुण द्रव्य में, शून्य के समान आचरण करता है और ऊपर लिखता है—यह क्रियाओं में, तुम सभी जगह दीखाई देती हो—यह क्रिया और द्रव्य में वह भी वैदेही है, यह द्रव्य का द्रव्य में—यह समझना चाहिए, अपि शब्द होने पर शाब्द विरोध है, और अर्थपरक होने पर अर्थगत विरोध है—यह सिद्धान्त है।

रम्यस्वभाववर्णनं स्वभावोक्तिः ॥ ४० ॥

रम्य स्वभाव वर्णन स्वभावोक्ति है ॥ ४० ॥

यथा—उद्वेल्लद्भुजवल्लरीव्यतिकरप्रोक्षिप्तकूर्पासक—
प्रत्यन्तावरणव्युदासविशदीभूतार्द्धवक्षोरुहम्।
दूरादायतरोमवल्लिविततस्कन्धोन्नमत्कन्धरं
किञ्चित्कोरकितेक्षणं विजयते रम्भोरु! ते जृम्भणम्॥

हे कदली के समान जघनवाली? तुम्हारी जंभाई हस्तलता के अतिक्रान्त मर्यादित होने से चोली के समीपस्थ देश के विस्तार से अर्द्ध कुचकमल विकसित होता है;

१. अत्र—मन्मथोऽप्यप्रमेय इति गुणद्रव्ययोः। शून्यायते च उल्लिखति च इति क्रिययोः इत्यपेक्षितम्।

दूर तक विस्तृत रोमावली सें स्कन्ध की ओर ग्रीवा झुक जाती है, ऐसी कलिका के समान तुम्हारा अवलोकन सबकी अपेक्षा उत्कृष्ट रूप से वर्तमान है।

स्तुतिनिन्दातात्पर्यकनिन्दास्तुत्यभिधानं व्याजस्तुतिः ॥ ४१ ॥

स्तुति और निन्दा के आशय से निन्दा और स्तुति का कथन व्याज स्तुति है ॥ ४१ ॥

यथा—प्रेयसः प्रणयभूरहमेवेत्याकलय्य वरगात्रि ! न दृप्येः ।
कान्तसौहृदमनन्तरमस्ति त्वद्विपक्षयुवतीनिवहेऽपि ॥

जैसे—हे सुन्दरशरीर वाली ! प्रियतम की प्रेमभूमि मैं ही हूँ, यह सोंचकर अभिमान मत करो, तुमसे अतिरिक्त स्त्रियों के प्रति प्रिय का प्रेम है।

(१) अत्र स्वस्मिन्प्रणये विषयत्वेऽपि सपत्नीजनं प्रति तत् न बध्नातीत्यतो निर्दोषासीति स्तुतिपर्यवसानम्।

प्रकृत में इसके प्रति प्रणय होने पर भी वह सपत्नियों को वह आबन्धक नहीं है—अतः निर्दोष हो—इस प्रकार स्तुति में इसका पर्यवसान होता है।

सोढा व्रणा यदधरे च पयोधरे च दौर्बल्यमभ्युपगतं च तनुलतायाम्।
दूति ! त्वया सुविहितं सुहृदोऽनुरूपं सिद्धौ विधेयविषयस्य विधिः प्रमाणम्॥

हे दूति ! अधर एवं पयोधर पर जो व्रण सहन किया, शरीर लता में दुर्बलता प्राप्त किया, सुहृद् के अनुरूप तुमने खूब ही अच्छा किया यह विधेय विषयक सिद्धि से विधि ही प्रमाण है।

अत्र निन्दायाम्।[1]

यहाँ निन्दा में पर्यवसान है।

अन्यनिन्दया अन्यनिन्दाभिव्यक्तिर्व्याजनिन्दा ॥ ४२ ॥

अन्य की निन्दा से अन्य की निन्दा की अभिव्यक्ति व्याज निन्दा है ॥ ४२ ॥

यथा—त्वं तावदाचर जनेषु वियोगभाजा-
मात्मोचितानि मलयानिल ! चापलानि ।
वाच्यः स एव तु परं भगवानगस्त्यो-
यो वृद्धिसम्मुखमरुन्ध मुधैव विन्ध्यम् ॥

जैसे :—हे मलयपवन ! वियोगिनियों के लिए अपने अनुरूप चपलता का आचरण करो, उस भगवान् अगस्त्य को ही मैं दोष देती हूँ जिसने सम्मुख बढ़ते विन्ध्य को व्यर्थ ही रोक दिया।

१. पर्यवसानमिति शेषः।

अत्रागस्त्यस्य निन्दया मलयानिलस्य निन्दा।

यहाँ अगस्त्य की निन्दा से मलय पवन की निन्दा है।

उभयोश्चमत्कारैकधर्मान्वयः सहोक्तिः ॥ ४३ ॥

दोनों में चमत्कारात्मक एक धर्म का अन्वय सहोक्ति है ॥ ४३ ॥

यथा—क्षीयन्ते सह निःसहैरवयवैस्तत्पूर्वपूर्वक्षणाः
प्राणात्याहितशङ्कयापि समुपागच्छन्ति हन्तोत्तराः।
सन्तस्तेऽपि निरन्तरायरुदितश्वासैः सहैवासते
त्वद्दत्तावधिवासरे व्यवधिना स्तोकेन युक्ते सति ॥

जैसे :—

हन्त ! प्राण के नाश की शङ्का से आगामी अवधि व्यतीत होती है, दुःसह अवयवों से पूर्व पूर्व क्षण व्यतीत होते हैं, जो शेष हैं वे भी निरन्तर रुदन एवं श्वास-प्रश्वास के साथ ही व्यतीत हो रहे हैं, अल्प अवधि से युक्त तुम्हारे द्वारा प्रदत्त समय इसी रूप में व्यतीत हो रहे हैं।

किञ्चिद्विना कस्यचिदप्राशस्त्यप्राशस्त्यान्यतराभिधानं विनोक्तिः ॥ ४४ ॥

कुछ अंश के अभाव में किसी का प्राशस्त्य या अप्राशस्त्य इनमें किसी एक का कथन विनोक्ति है ॥ ४४ ॥

यथा—भवद्विषयतां विना सुमुखि ! ते मृषा चाक्षुषं—
विना तव वचःसुधामपि मुधा श्रवस्सम्भवः।
त्वदीयपरिरम्भणानुभवमाधुरीमन्तरा
कलापिकलकाकली कलयते न कौतूहलम् ॥
तुहिनरहितेव नलिनी विकल्पजालैरनाकुलेव सती।
हृदयदयितस्य विरहं विहाय रम्या वरारोहा ॥

जैसे :—

हे सुमुखि ! तुम दर्शन का विषय नहीं रहती हो तो नेत्र व्यर्थ हैं, तुम्हारे वचनामृत के विना कर्ण भी व्यर्थ हैं। तुम्हारे आलिङ्गनात्मक अनुभव माधुरी के विना कोकिल कलरव समूह भी कौतूहल के जनक नहीं होते है, विकल्प समूहों से अनाकुल के समान हिम रहित के समान रहती हुई भी कमलिनी हृदय प्रिय के विरह के अनुभव छोड़कर सुन्दर जघना रमणीय है।

[1]नित्यसम्बन्धानामसम्बन्धवचनमन्या विनोक्तिः ॥ १ ॥

जिनका नित्य सम्बन्ध है उनका असम्बन्ध कथन अन्य वक्रोक्ति है।

---

१. नित्यः सम्बन्धो येषामिति विग्रहः।

यथा—बिभ्रद्धासामभावं स्फुरति हिमरुचिर्दृश्यमाने त्वदास्ये
बिम्बोष्ठे स्वाद्यमाने मधुरिमविधुरा बुध्यते सा सुधापि।
एवं तावद्भवत्या अनघमवयवे मार्दवं संविभाव्य
प्रव्यक्तं सौकुमार्य्यातिशयविरहवद्भाति मन्दारदाम ॥[1]

जैसे :—तुम्हारा मुख दृष्टिगोचर होने पर हिम रुचि तेज का अभाव युक्त स्फुरण होता है। तुम्हारे बिम्ब सदृश ओष्ठों का आस्वादन करने में सुधा भी माधुर्य्य रहित अनुभूत होती है। तुम्हारे अवयवों की दोष रहित कोमलता का अनुभव कर मन्दार वृक्ष सुकुमारता से शून्य के समान अवगत होते हैं।

किञ्चिद्दत्त्वा कस्यचिदुपादानं परिवृत्तिः ॥ ४५ ॥

कुछ देकर किसी का उपादान परिवृत्ति अलङ्कार है ॥ ४५ ॥

यथा—प्रदाय नवयौवनं कुसुमधन्वना तावकं
मृगाङ्कमुखि ! मानसं सदृशमात्मसान्निर्मितम्।
मदीयहृदयं त्वया समुपगृह्य मह्यं पुनः
प्रसह्य जडतातनुक्षितिरुजः प्रसादीकृताः ॥

जैसे :—हे मृगाङ्कमुखि ! कामदेव ने तुम्हारा नवयौवन प्रदान कर मानों मन में कल्पित आत्मानुरूप ही निर्माण किया है। मेरा हृदय तुमने सर्वथा ग्रहण कर मुझे हठात् जड शरीर से उत्पन्न रोग को दूर किया।

पूर्वत्र सदृशयोर्विनिमय उत्तरत्रासदृशयोः।

पूर्व में सदृश धर्मों में विनिमय है और आगे असदृश धर्मों में विनिमय है।

भूतभाविविशेषप्रत्यक्षं भाविकम् ॥ ४६ ॥

भूतविशेष और अविविशेष का प्रत्यक्ष भाविक है ॥ ४६ ॥

यथा—त्वां पश्यन्नवतीर्णां विहारवापीविभागमगात्।
पूर्वापरकालीनालङ्कृतिशोभां विभावयाम्येव ॥

जैसे :—तुम्हारे अवतीर्ण होने पर विहारवापी विभक्त हो गई है। पूर्व और अपरकालीन अलङ्कार शोभा को अवगत करता हूँ।

हेतूक्तिः काव्यलिङ्गम् ॥ ४७ ॥

हेतु का कथन काव्यलिङ्ग है ॥ ४७ ॥

यथा—दृष्ट्वा बलाहकगलद्दलवज्जलौघैरन्तर्हितानि सहसा सरसीरुहाणि।
नेत्रारविन्दयुगलं पथिकाङ्गनाया बाष्पैः पयोधरपिधानमिवातनोति ॥

1. विरहवदिति मतुबन्तो न वत्यन्तः।

जैसे :—मेघ के द्वारा होनी हुई भयङ्कर वृष्टि को देखते हुए सरोवर के कमल समूह अन्तर्हित हो गये, मानो नयनकमल युगल वाष्पों के द्वारा पथिक की अङ्गनाओं के पयोधरों को छिपा रहे हो।

अत्रोत्तरार्द्धाभिधेयं प्रति पूर्वार्द्धं हेतुरवान्तरवाक्यार्थतयोक्तः।

प्रकृत में उत्तरार्द्ध के प्रति पूर्वार्द्ध हेतु अवान्तर वाक्य के रूप में कहे गये हैं।

स्वतन्त्रवाक्यार्थत्वेन यथा—

तत्तद्व्यक्तितया निवेदनमनैश्वर्य्यादसम्भावितं
सन्देशार्थकमेकदेशकथनं ब्रूयादियत्तामिव।
सामान्यानुगमोऽपि पर्यवसितो यत्किञ्चिदादाय त-
त्किं प्राणप्रियविप्रयोगरुजतां लेखे लिखेयं सखि!॥

स्वतन्त्र वाक्यार्थ के रूप में, जैसे :—

उस-उस व्यक्तियों के रूप में निवेदन अनैश्वर्य के कारण सम्भावित नहीं हैं। सन्देश के लिए एकदेश का कथन इयत्ता के परिचायक होंगे। सामान्य अनुगम भी थोड़ा ही अंश लेकर पर्यवसित होगा, अतः प्राणप्रिय के वियोगजनित कष्ट को लेख में कैसे लिखूँ।

अत्र विरहव्यथानिवेदनानुपपत्तौ वाक्यत्रयेण हेतूपन्यासः।

प्रकृत में विरहव्यथा के निवेदन की अनुपपत्ति में तीन वाक्यों को हेतु के रूप में कहा गया है।

वाच्यस्यापि भङ्ग्यन्तरेणाभिधानं पर्यायोक्तम् ॥ ४८ ॥

वाच्य अर्थ का अन्य भङ्गी से कथन पर्यायोक्त अलङ्कार है॥ ४८॥

यथा—सन्तप्तं त्वददर्शनेन हृदयं शेते स्वतापोर्मिषु
त्यक्तं त्वत्परिचुम्बनैरपि कराम्भोजे कपोलद्वयम्।
त्वद्विश्लेषविशेषशोषविवशं वक्षोजकुम्भद्वयं
विस्रस्तालकजालशैवलतामालम्बते सुभ्रुवः॥

जैसे :—सुन्दर भौंओंवाली तुम्हारे अदर्शन से सन्तप्त हृदय होने से अपने ताप की तरङ्गों में सो रहा है, तुम्हारे परिचुम्बन से शून्य दोनों कपोल कर कमल पर सो रहा है। तुम्हारे विशेष वियोग शुष्क विवश वक्षःस्थल के कुम्भद्वय (स्तन) विस्रस्त केश जाल रूपी शैवाललता का आलम्बन कर रहे हैं।

अत्र विरहे तत्कार्यस्यावश्याभिधेयत्वादुक्तरीत्या विरहावस्थाभिधानम्।

प्रकृत में विरह में उनके कार्य अवश्य अभिधेय होने से उक्त रूप में विरहावस्था का कथन है।

व्याजेनेष्टसाधनं द्वितीयं पर्यायोक्तम् ॥ १ ॥

व्याज से इष्ट साधन द्वितीय पर्यायोक्त अलङ्कार है ॥ १ ॥

यथा—पुरस्तादालीनां कृतपरिकरा मानकलहेऽ-
ऽप्यमत्वा निर्वाहं प्रियतमपुरस्सूक्तिसुधया ।
समुद्दिश्य प्राणप्रणयितमुत्तंसकर्माणि
तथाऽसावत्याक्षीत्प्रणिपतति दीपोपरि यथा ॥

जैसे :—सखियों के समूह से घिरी हुई सखियों के सम्मुख मान कलह करने पर भी निर्वाह की आशा न देखकर प्रियतम के आगे अमृत वाणियों से सम्यक् उद्देश्य पूर्वक प्राण प्रियतम मस्तकालङ्कार को दीप पर इस प्रकार परित्याग किया कि वह बुझ गया ।

अत्र सम्भोगप्रतिबन्धकसखीनिस्सारणार्थं दीपनिर्वापणेन सम्भोगरूपेष्ट-साधनम् ।

प्रकृत में सम्भोग प्रतिबन्धक सखियों को हटाने के लिए दीप के निर्वाण से सम्भोग रूप इष्ट साधन होता है ।

आनुकूल्यपर्य्यवसायिप्रातिकूल्यमनुकूलम् ॥ ४९ ॥

आनुकूल्य पर्यवसायी प्रातिकूल्य को अनुकूल अलङ्कार कहते हैं ॥ ४९ ॥

यथा—किञ्चित्तिर्यगवेक्षणे सहजतो नीतेऽन्यथासिद्धतां
कर्णोत्तंसकुशेशये प्रणिहिते मूर्ध्ना धृते सादरम् ।
तात्पर्ये सति पर्यवस्यति विधौ नेत्यान्तिकानां गिरां
सा मानाद्व्यधित स्वयंभुजलताबन्धं प्रसादोचितम् ॥

कुछ टेढ़ेपन से अवलोकन करने पर स्वभावतः अन्यथासिद्धता प्राप्त होने पर कर्णालङ्कार कमल प्रणिधानपूर्वक सादर मस्तक पर धारण करने पर तात्पर्य रहने पर विधि के अनुकूलत्व में पर्यवसान होने पर समीपस्थों की वाणी का निषेध कर वह मानपूर्वक प्रसादोचित स्वयं भुजलताबन्ध का विधान किया ।

वस्तुनोऽतिशयविशेषकथनमुदात्तम् ॥ ५० ॥

वस्तु का अतिशय विशेष कथन उदात्त अलङ्कार है ॥ ५० ॥

यथा—लीलापूर्वकमिन्द्रनीलनिलयादभ्रंलिहाद् विभ्रमा-
न्निर्यान्तीं जलदोदरादिव नवां सौदामिनीं कामिनीम् ।
पश्यन्तीभिरदभ्रमभ्रसमये दत्तावधीनां प्रियै—
रालीभिः सुदृशामभूयत भृशायस्यन्मनोवृत्तिभिः ॥

जैसे :—विलास पूर्वक इन्द्रनील समूह मेघ से विभ्रम से निकलती हुई मेघ के उदर की नवीन विद्युन्माला रूपी कामिनी को सतत वर्षा काल में आऊँगा यह प्रियों के द्वारा अवधि को प्राप्त सुनयना मनोवृत्ति को अवगत करने वाली सखियों से देखी जाती हुई कष्ट का अनुभव कर रही है।

[1]महतामङ्गत्वकथनं द्वितीयमुदात्तम् ॥ १ ॥

उत्कृष्ट वर्णनीय वस्तु में स्थित अङ्गित्व प्रतियोगित्व रूप अङ्गत्व का कथन द्वितीय उदात्त अलङ्कार है ॥ १ ॥

यथा—[2]कालिन्दीयं सहचरि ! तमालनीलायमानतीरान्ता ।
कैवर्तककन्यायां पराशरो यत्र रतिमापत् ॥

जैसे :—सङ्केत स्थान का सूचन करती हुई किसी नायिका का किसी के प्रति कथन है।

हे सहचरि ! यह तमाल वृक्ष की नील आभा सम्पन्न तीर प्रान्तवाली कालिन्दी है, (यह वही स्थान है) जहाँ संयम सम्पन्न पराशर के मन में भी (अगम्या) धीवर की कन्या के प्रति क्षोभ होने से रति किया अर्थात् अगम्या गमन किया है, तब अन्य व्यक्तियों का क्या कहना है ?

अद्भुतशौर्यादिवर्णनमत्युक्तिः ॥ ५१ ॥

अद्भूत शौर्यादि का वर्णन अत्युक्ति अलङ्कार है ॥ ५१ ॥

यथा—आकाशं स्मरशासितुः फलवता कामेन कायान्तरं
यन्नक्षत्रमयप्रसूनविशिखैर्विष्वक्समाविध्यत ।
तस्यैते पतयालवोऽव्ययवा धाराधराणां छला-
न्निःश्वासानिलरंहसा विरहिणां मन्येऽन्तराले धृताः ॥

कामदेव ने अन्य शरीर को धारण कर नक्षत्रमय पुष्प समूहरूपी बाणों से सम्पूर्ण आकाश को भलीभाँति आविद्ध कर दिया है, उन पतनशील अवयवों को मेघों के व्याज से विरहियों के निःश्वास वायु के वेग से अन्तराल में अवस्थित कर दिया है।

एकहेतुत्वेऽपि हेत्वन्तरोक्तिः समुच्चयः ॥ ५२ ॥

एकहेतुता होने पर भी अन्य हेतु का कथन समुच्चय अलङ्कार है ॥ ५२ ॥

१. महताम् उत्कृष्टानां वर्णनीयनिष्ठाङ्गित्वप्रतियोगित्वरूपस्य अङ्गत्वस्य कथनं द्वितीयमुदात्तमित्यर्थः ।

२. सङ्केतस्थानं सूचयन्त्याः कस्याश्चित्काञ्चित्प्रत्युक्तिः । यत्र तादृशसंयमवतः पराशरस्यापि मनःक्षोभोदयादगम्यागमनं जातं तत्र का वार्ताऽन्येषामिति भावः ।

यथा—पूर्वं चाक्षुषमेव तद्विषयकं चेतोऽपहारक्षमं
तद्वृत्तेरथ चाक्षुषस्य विषयीभावस्य वा का कथा ।
वैलक्षण्यमपाङ्गभङ्गविषयं तत्रापि मन्दस्मितं
किं वाच्यं गमनक्षणे विचलितग्रीवं पुनर्वीक्षणम् ॥

तद्विषयक चाक्षुष ज्ञान ही हृदय को हरण करने में समर्थ है, यदि उसके व्यवहार चाक्षुष के विषय होते हैं तब क्या कहना है ? नेत्र प्रान्त की भङ्गिमा की विलक्षणता उसमें भी मन्द मुस्कान, गमन काल में एकटक देखकर इससे आगे क्या कथनीय है ।

गुणक्रियायौगपद्यमपरः समुच्चयः ॥ १ ॥[1]

गुण और क्रिया का एक साथ होना दूसरा समुच्चय है ॥ १ ॥

यथा—हरति लोहितता तडितां गुणैर्मलिनता च विहायसि वारिदैः ।
विशदता विपिनेषु च केतकैः प्रवसतां हृदि चोत्सुकताऽभवत् ॥

बिजलियों के गुणों से हरिद्वर्णता और लौहित्य मेघों से आकाश में मालिन्य, केतकों से वन में स्वच्छता, प्रवास में स्थित व्यक्तियों के लिए उत्कण्ठा के आधायक हुए ।

श्रवणाभिमुखं परिप्लवत्वं गतवानेष च तावको दृगन्तः ।
मदनोऽपि शरासनं व्यकर्षद्विशिखाश्चानशिरे मनो मदीयम् ॥

कान के अभिमुख चञ्चलता से बढ़ता हुआ यह तुम्हारा नेत्र प्राप्त हुआ है मानों कामने अपना बाण आकृष्ट किया है, सर्प ने मेरे मन को दंशन किया है ।

व्यवहरन्ति सहसा सहकारानोकहेषु परपुष्टसमूहाः ।
बिभ्रते च मलिनत्वमिदानीमध्वनीनवनिताहृदयानि ॥

सहसा वृक्षों में परिपुष्ट आम्रवृक्ष विशेष रूप से आहृत मन को हरण कर रहे हैं, और मार्गस्थ वनिताओं के हृदयों का इस समय मालिन्य सम्पादन कर रहे हैं ।

एकस्यानेकत्रानेकस्यैकत्र वा क्रमेण वृत्तिः पर्य्यायत्वम् ॥ ५३ ॥

एक की अनेकत्र और अनेक की एकत्र क्रम पूर्वक वृत्ति पर्यायत्व है ।

---

१. अत्र गुणौ च क्रिये च गुणक्रियाः गुणश्च क्रिया च गुणक्रिये गुणक्रियाश्च गुणक्रिये च गुणक्रियाः तासां यौगपद्यम् इति विग्रहो बोध्यः । एवं च गुणयोः क्रिययोर्गुणक्रिययोश्च यौगपद्येऽपरः समुच्चय इत्यर्थः । अत्र च सङ्ख्याविशेषोऽविवक्षितः । तेन गुणानां क्रियाणां वा यौगपद्येऽपि भवति ।

आद्यो यथा—

[1]कुचयोर्द्वयेऽर्द्धचन्द्रस्पर्शिनि वैमुख्यमर्हमेतस्याः ।
चित्रं प्रतियुवतीनां तद्व्यतिरेकेऽपि यत्तदभूत् ॥

अत्र वैमुख्यस्य कुचवृत्तेस्तदुत्तरं सपत्नीषु वृत्तिः ।

प्रथम यथा—

सौभाग्य की सूचना देती हुई किसी नायिका की किसी के प्रति उक्ति है—

इस नायिका के दोनों स्तनों पर नख क्षत एवं गल हस्त सौतों के लिए विमुखता और पराङ्मुखत्व का साधन है, किन्तु उसके अभाव में भी अपने प्रति नायक की अनुराग-शून्मता की आशङ्का से पराङ्मुखत्व सम्पन्न होता है ।

द्वितीयो यथा—

[2]अपहाय कुटिलमीक्षणमृजुकविलोकेन सूचयसि मानम् ।
ऋजुकुटिलत्वमतन्त्रं प्राह्वास्वरसं तु विकृतिरेव ॥

मान को छिपाने वाली किसी नायिका की किसी के प्रति यह उक्ति है—

वक्र अवलोकन छोड़कर सरल रूप से अवलोकन से मान की सूचना मिलती है । ऋजुता और कुटिलता अविवक्षित हैं, सदा अवस्था का वैपरीत्य ही अस्वरसता को कह रही है ।

अत्रैकस्यामेव नायिकायां पूर्वं कुटिलस्य पश्चात्सरलस्य दर्शनस्य वृत्तिः ।

प्रकृत में एक ही नायिका में पहले कुटिल और बाद में सरल दर्शन का व्यवहार है ।

व्याप्येन व्यापकज्ञानमनुमानम् ॥ ५४ ॥

व्याप्य से व्यापक का ज्ञान अनुमान है ॥ ५४ ॥

यथा—अन्योन्याभिमतार्थकोविदतया स्वान्तात्मनोरेकक-
व्यापारव्यभिचारहानिनियतेः प्राणेन्द्रियाणामपि ।

---

१. सौभाग्यं सूचयन्त्याः कस्याश्चित्काञ्चित्प्रति कथनम् । अर्धचन्द्रो नखक्षत-विशेषो गलहस्तश्च । वैमुख्यं वृत्तत्वं पराङ्मुखत्वं च । तद्व्यतिरेकेऽपि अर्धचन्द्राभावेऽपि सपत्नीनां स्वस्मिन्नायकाननुरागमाशङ्क्य पराङ्मुखत्वम् ।

२. मानं गोपयन्तीं काञ्चित्प्रति कस्यचिदुक्तिरियम् । अतन्त्रम् अविवक्षितम् । विकृतिः सार्वदिकावस्थावैपरीत्यम् । तथा चाभिमुखदर्शनान्मानो नास्तीति न वाच्यम् । सर्वदा कुटिलदर्शनहीनायाः कटाक्षमुन्मुच्य दर्शनेन मानस्यानुमानादिति भावः ।

अन्योन्यप्रतियोगिकस्य विरहे भेदस्य संसाधिते
साधीयो युवयोर्वियोगधिषणा भ्रान्तित्वमालम्बते ॥

जैसे :--परस्पर अभिमतार्थं का ज्ञाता होने से आत्माओं की एकता में व्यापार व्यभिचार की हानि के निश्चय से प्राण और इन्द्रियों का भी भेद नहीं है। परस्पर प्रतियोगि के विरह से भेद संसाधित होमे पर भी तुम दोनों में वियोग बुद्धि निश्चित ही भ्रान्ति का ही अवलम्बन करती है।

अत्रेमौ भिन्नाविति भ्रमः भेदाभाववति भेदप्रकारकत्वादितिहेतुविशेषण-सिद्ध्यर्थं चेमौ भेदाभाववन्तौ सर्वदा समानविषयज्ञानादिमत्त्वादित्यनुमितिः। द्वयोरपि कल्पितव्याप्तिमूलकत्वादलङ्कारत्वम्।

अर्थात् ये दोनों भिन्न हैं यह भ्रम है, क्योंकि भेद रहित में भेदत्व प्रकारक ज्ञान होने से इस प्रकार हेतु विशेषण की सिद्धि के लिए ये दोनों भेदाभाववान् है, क्योंकि सदा समान विषयक ज्ञान होने से यह अनुमिति है। दोनों मैं कल्पित व्याप्ति ही मूल है, अतः अलङ्कारत्व है।

चमत्कारिसाक्षात्कारः प्रत्यक्षम् ॥ ५५ ॥

चमत्काराधायक साक्षात्कार प्रत्यक्ष है ॥ ५५ ॥

यथा—पीयूषद्युतिमणिशालभञ्जिका वा
किं प्रेयोविरहितमत्तकाशिनीति।
सन्देहेऽभ्युदयति निश्चिकाय शोषा-
द्वारीणां स्तनकमले निपातुकानाम् ॥

अत्र वारिशोषेण तापकत्वमनुमाय ततो विरहित्वव्याप्यतापकत्वज्ञान-रूपविशेषदर्शनसत्त्वेनेयं विरहिणीति प्रत्यक्षम्।

अमृत कान्ति मणिशाल भञ्जिका है या प्रिय विरहित मत्त वज्र है—इस सन्देह के होने पर जल के शोषण ताप का अनुमान कर उससे विरहित्व व्याप्यतापकत्व-रूप विशेष ज्ञान ने यह विरहिणी है--यह प्रत्यक्ष किया।

प्रकृत में जल के शोषण से तापकत्व का अनुमान कर उससे विरहितत्व-व्याप्यतापकत्व का ज्ञान होने से रूप विशेष दर्शन होने से यह विरहिणी है यह प्रत्यक्ष है।

अतिदेशवाक्यार्थजन्यं ज्ञानमुपमितिः ॥ ५६ ॥

अतिदेश वाक्य से जन्य ज्ञान उपमिति अलङ्कार है ॥ ५६ ॥

यथा—लीलावने कुसुमितेषु महीरुहेषु
तं सिन्दुवारतरुमिन्दुमुखि! प्रतीहि।

स्वच्छन्दसेवितमनोभवकेलिखेद-
स्वेदाम्बुबिन्दुसदृशाः स्तवका यदीयाः ॥

हे चन्द्रमुखि ! लीला वन के कुसुमित वृक्षों में तुम सिन्दुवार वृक्ष के समान प्रतीत हो रही हो, स्वतन्त्र रूप से सेवित काम क्रीडा के खेद से उत्पन्न पसीने की विन्दु के सदृश जिसके गुच्छे थे उस सिन्धुवार वृक्ष के समान प्रतीत हा रहे हैं।

अत्र स्वेदबिन्दुमुकुलवान् सिन्दुवार इत्यतिदेशवाक्यार्थज्ञानादयं सिन्दुवारपदवाच्य इत्युपमितिः।

प्रकृत में स्वेद विन्दु मुकुल वाले सिन्दुवार के सादृश्य रूप वाक्यार्थ ज्ञान से यह सिन्दुवार पद से वाच्य है—यह उपमान है।

आप्तवाक्यं शब्दः ॥ ५७ ॥

आप्त वाक्य शब्द है ॥ ५७ ॥

यथा—[1]रोहिण्याः सुत उल्मुकमजनयदिति तावदाप्तवचः।
तद्दयितादेव पुनस्तज्जनिरध्यक्षसंसिद्धा ॥

जैसे :—यह विरहिणी की उक्ति है :—

बलराम की पत्नी रोहिणी का पुत्र उल्मुक है, यह आप्त कथन है, रोहिणी के प्रिय चन्द्र से उस उल्मुक अङ्गार = अलात की उत्पत्ति यह प्रत्यक्ष सिद्ध है, क्योंकि, चन्द्रकिरणें अङ्गार के समान उष्ण स्पर्श से अनुभूत है।

उपपाद्येनोपपादककल्पनमर्थापत्तिः ॥ ५८ ॥

उपपाद्य से उपपादक का कल्पन अर्थापत्ति है ॥ ५८ ॥

यथा—अस्मत्सख्यङ्कपालीविरहसहकृतां पीवरोत्तुङ्गनारी—
वक्षोजाश्लेषमुद्रां दधदतिविशदां वक्षसा लक्ष्यसे त्वम्।
आश्चर्य्यं पर्यवस्यत्यपि नियतमसद्दम्भमम्भोरुहाक्ष्याः
सम्भोगे यत्परस्याः शठ ! शपथशतैः श्राम्यसीत्यप्यसम्यक् ॥

मेरी सखी के अङ्क प्रान्त के विरह के सहकृत स्थूल उन्नत वक्षःस्थल आलिङ्गन चिह्न को स्पष्ट रूप से हृदय से लक्षित हो रहे हैं, आश्चर्य है कि निश्चित असत्

---

१. विरहिण्या उक्तिरियम्। बलरामपुत्र उल्मुकसंज्ञ इति पुराणे प्रसिद्धम्। तद्दयितादेव रोहिणीप्रियाच्चन्द्रात्तस्योल्मुकस्य अलातस्य उत्पत्तिस्तु अध्यक्षसंसिद्धा प्रत्यक्षेणानूभूयते चन्द्रकिरणानामङ्गारवदुष्णस्पर्शत्वानुभवादिति भावः। अङ्गारोऽलात उल्मुकमित्यमरः।

दम्भ के साथ कमलनयन के साथ सम्भोग करने पर हे शठ ! तुम सैकड़ों शपथों से शान्त करना चाहते हो—यह उचित नहीं है।

अत्र तस्याङ्गनासम्भुक्तत्वं विनानुपपद्यमानम् एतत्सम्भोगरहितत्वे सति सम्भोगचिह्नत्वमन्याङ्गनासम्भोगमाक्षिपति।

इस प्रस्तुत प्रसङ्ग में अङ्गना के सम्भोग के अनुत्पन्न सम्भोग चिह्न इस अङ्गना के साथ आलिङ्गन न करने पर अन्य अङ्गना के आलिङ्गन का आक्षेप करते हैं।

प्रतियोगिभिन्नायां प्रतियोगिप्रत्यक्षसामग्र्यां सत्यां प्रतियोगिनोऽप्रत्यक्षमनुपलब्धिः ॥ ५९ ॥

प्रतियोगी से भिन्न प्रतियोगी प्रत्यक्ष सामग्री के रहने पर प्रतियोगी का अप्रत्यक्ष अनुपलब्धि अलङ्कार है ॥ ५९ ॥

यथा—परितो निपुणं निरूपयन्त्या सहचर्य्या सह सुभ्रुवा निकुञ्जम्।
अनिरीक्षणतः प्रियस्य तस्मिन्विरहं तस्य विभाव्य हा व्यपादि ॥

अपनी सखी के साथ सुन्दर भौं वाली निकुञ्ज के चारों ओर भलीभाँति देखती है, किन्तु प्रिय को न देखने से उसका विरह समझ कर वह खेद का अनुभव करती है।

सम्भवो यथा—॥ ६० ॥

सम्भव, जैसे:— ॥ ६० ॥

त्वद्वक्षोरुहयुगले विभाति शोभा माणिक्याभरणभुवां भरेण भासाम्।
भूभृत्त्वे सति शिखरस्य सम्प्रयोगः पीयूषद्युतिमुखि! सम्भवं बिभर्त्ति ॥

हे सुधाकान्तिमुखि ! तुम्हारे स्तन-कमल-युगल माणिक्य अलङ्कारों की कान्ति से शोभायमान है, पर्वतत्व होते हुए शिखर का सम्प्रयोग सम्भव मालूम पड़ता है।

अदृष्टवक्तृकः प्रवाद एवैतिह्यम् ॥ ६१ ॥

अदृष्टवक्तृक प्रवाद ऐतिह्य है ॥ ६१ ॥

यथा—स्फुरदलकत्वं युक्तं रोहणवृक्षस्य रोहिणीशमुखि !।
वैश्रवणस्य निवासो वृद्धैरभिधीयते यदयम् ॥

हे चन्द्रमुखि ! रोहण पर्वत वृक्ष का विकसित अलकत्व ठीक है, क्योंकि वृद्धों के द्वारा कुवेर का निवास यहाँ कहा जाता है।

साभिप्रायविशेषणत्वं परिकरः ॥ ६२ ॥

अभिप्राय पूर्वक विशेषणत्व परिकर अलङ्कार है ॥ ६२ ॥

यथा—उपनिबन्ध्यतयाधिकमन्थरा विधुरतां दधतो विधुतावधिम् ।
निरवकाशितपैशुनशासनाः सहृदयप्रणयाः सखि ! दुर्लभाः ॥

हे सखि ! उपनिबन्धन होने से अधिक मन्थरा, विकलता से कम्पिता, अवकाश शून्य क्रूर शासन युक्त सहृदय प्रणयी दुर्लभ है ।

विशेष्यस्य साभिप्रायकत्वं परिकराङ्कुरः ॥ ६३ ॥

विशेष्य का अभिप्राय पूर्वक कथन परिकराङ्कुर अलङ्कार है ॥ ६३ ॥

यथा—कण्टकभरेण भवतीमावृणुते कुसुमसायकोऽप्येताम् ।
अधरकुचस्मितपल्लवगुलुच्छकुसुमा हि वीरुदसि ॥

अत्र कुसुमसायकेतिविशेष्यसमर्पकसदं साकूतम् । कुसुमार्थिनि लतारक्षणस्यावश्यकलाभात् ।

आपको रोमाञ्च के द्वारा कामबाण ने भी आवृत कर लिया है, क्योंकि अधरोष्ठ कुच और मन्द मुस्कान से पल्लव, कुसुम के गुच्छों से परिपूर्ण विस्तृत लता के समान मालूम होती हो, प्रकृत में कुसुम सायक यह विशेष्य समर्थक पद व्याजपूर्वक कहा गया है, क्योंकि, कुसुम को चाहने वालों के द्वारा लता का संरक्षण आवश्यक है ।

रहस्यप्रकाशप्रतिबन्धकवाक्यं व्याजोक्तिः ॥ ६४ ॥

रहस्य प्रकाश के प्रतिबन्धक वाक्य को व्याजोक्ति अलङ्कार कहा जाता है॥६४॥

यथा—कुचाभोगं भृङ्गाः कमलमुकुलत्वाकलनया
दशन्त्येते दन्तच्छदमपि शुका बिम्बरभसात् ।
विना मां प्रत्यग्रं कुसुमितमिदानीमुपवनं
प्रयाता स्वीयानां फलमविनयानामनुभवः ॥

कमल कोरक की कल्पना से भ्रमर कुच का आभोग कर रहे हैं, शुकगण बिम्ब समझ कर तुम्हारे अधर का दशन क्षत कर रहे हैं, मेरे विना इस समय सामने ही यह उपवन कुसुमित है, अपने अविनय के फल का भोग करो ।

[1]तादृशी क्रिया युक्तिः ॥ ६५ ॥

रहस्य प्रकाश की प्रतिबन्धक क्रिया युक्ति है ॥ ६५ ॥

---

१. तादृशी, रहस्यप्रकाशप्रतिबन्धिकेत्यर्थः ।

सा यथा—सध्रीची दयितस्य सन्निधिमसम्बाधेन गत्वाऽध्वना
मार्गप्रस्मृतिकैतवेन रहसि स्थित्वा यथामानसम् ।
उद्यत्केतककण्टकाकुलतया प्राप्यव्रणेनाध्वना
मार्गप्रस्मृतिकैतवेन कुशला दूती परावर्तते ॥

वह जैसे :—सखी वाधा शून्य मार्ग से प्रिय के समीप जाकर इच्छापूर्वक मार्ग संस्मरण के व्याज से एकान्त में ठहर कर उठे हुए केतक के काँटे से आकुलित मार्ग में व्रण युक्त होकर मार्ग के संस्मरण के व्याज से कुशल दूती को लौटाती है ।

ज्ञातपररहस्यप्रकाशनं पिधानम् ॥ ६६ ॥

ज्ञात दूसरे के रहस्य का प्रकाशन पिधान है ॥ ६६ ॥

यथा—पाणिना स्वमधरं पिदधानं वीक्ष्य वल्लभतमं हरिणाक्षी ।
तत्कपोलतलवर्ति गृहीत्वा केतकीदलमबीजयदेनम् ॥

जैसे :—हरिण के समान नेत्र वाली ने प्रियतम अपने अधर को अपने हाँथ से छिपाते हुए देखकर उस कपोल तल स्थित केतकीदल से इसको पंखा किया ।

प्रतिभया ज्ञातस्यार्थस्यान्यानवगम्यप्रकारेण प्रकाशनं सूक्ष्मम् ॥६७॥

ज्ञात अर्थ को प्रतिभा के द्वारा अन्य के द्वारा अनवगति के रूप में प्रकाशन सूक्ष्म अलङ्कार है ॥ ६७ ॥

यथा—कामुके किमपि केलिकन्दुकं पाणिना स्पृशति भावपूर्वकम् ।
अन्तरा निजमुरोरुहद्वयं कामिनी न्यधित मौक्तिकावलिम् ॥

जैसे :—कामुक किसी क्रीडा-कन्दुक को भाव पूर्वक हाथ से स्पर्श करते हैं, तब अपने स्तनों के मध्य में कामिनी ने मुक्ता माला को स्थापित कर दिया ।

स्वभावेनाध्यवसिते कन्दुके करन्यासेन सम्भोगसमयं जिज्ञासमाने यूनि चक्रवाकाध्यवसिते स्तनद्वये मुक्तावलिदानेन चक्रवाकविच्छेदाधिकरणसमयस्तथेति विदग्धयुवत्या व्यञ्जितम् ।

स्वभावतः नियत कन्दुक को कर स्पर्श से सम्भोग के समय की सूचना की जिज्ञासा करने वाले युवक को चक्रवाक रूपी स्तन-द्वय को मुक्ता समूह प्रदान से चक्रवाक का वियोग जिस समय होगा वह समय होगा उस समय आना यह चतुर नायिका ने सूचित किया ।

अन्यतात्पर्य्येणान्यं प्रति कथनं गुच्छोक्तिः[1] ॥ ६८ ॥

१. गूढोक्तिरित्युचितम् । तथा च कुवलयानन्दे-गूढोक्तिरन्योद्देश्यं चेद्यदन्यं प्रति कथ्यते । इति ।

अन्य तात्पर्य से अन्य के प्रति कथन गुच्छोक्ति[1] अलङ्कार ॥ ६८ ॥

यथा—कीचकवृन्दं सहचरि ! भीमेन ज्वलनतेजसा दग्धम् ॥
येनाकारि विहाराकाङ्क्षा निभृतैव कान्तायाः[2] ॥

जैसे :—किसी कुलटा नायिका की सखी के प्रति उक्ति है ।

अतिशय दहनस्वभाव तेज से वंश वन को जला दिया, अर्थात् जिस नायिका ने अपना अभिसरण समय को गुप्त रूप से स्थापित किया, वह्नि के समान प्रभावशाली भीमसेन के द्वारा कीचक वर्ग को नष्ट किया और द्रौपदी के साथ विहार आकांक्षा का विधान किया ।

अत्र सख्याः सख्यन्तरं प्रति विराटपर्वकथोक्तिः । उपनायकं प्रति सङ्केत-स्थानस्य विघटितत्वादन्यत्स्थलमन्विष्यतामिति व्यङ्ग्यम् ।

यहाँ सखी का सखी के प्रति विराटपर्व की कथोक्ति है । उपनायक के प्रति सङ्केत स्थान के विघटित हो जाने के कारण दूसरा स्थान खोजो-यह व्यङ्ग्य है ।

गुप्तार्थस्य कविना स्फुटीकरणं विवृतोक्तिः ॥ ६९ ॥

गुप्त अर्थ का कवि के द्वारा स्फुट करना विवृतोक्ति है ॥ ६९ ॥

यथा—आरामातिशयेक्षणप्रकरणे नीतेन साक्षात्क्रिया-
मेकामप्यतिसौरभेण तरुणोत्तंसेन तस्या भुवः ।
मूर्द्धः सामनि मञ्जरीं कलयता मन्दानिलावेल्लितां
चेतो मे हृतमित्युदाहृतवती साकूतमालीं वधूः ॥

उपवन के अवलोकन के समय उस भुमि के एक अत्यन्त सुन्दर आभूषण ने सहसा आकृष्ट किया । सिर की माँग में मन्द पवन द्वारा आन्दोलित मञ्जरी धारण करने वाले ने मेरा हृदय हरण कर लिया यह बात वधू ने अपनी सखी से सव्याज कहा ।

---

१. गूढोक्ति यह कहना उचित है । क्योंकि कुवलयानन्द में अन्य उद्देश्य से यदि अन्य के प्रति कहा जाता है तो वह गूढोक्ति है ।

२. कुलटायाः सखीं प्रति कस्याश्चिदुक्तिः । महता ज्वलनमयेन तेजसा वंशवनं दग्धम्, येन नायिकाया अभिसरणं गुप्तमेव स्थापितमिति विवक्षितार्थः । वह्निसदृश-प्रभावेन भीमसेनेन कीचककुलं नाशितं येन द्रौपद्या विहाराकांक्षा विहितेति यथा-श्रुतार्थः ।

अत्र व्यङ्ग्योऽप्युपनायकदर्शनरूपोऽर्थः साकूतमिति कविना वाच्यप्रायतां नीतः।

यहाँ उपनायक दर्शन रूप व्यङ्ग्य अर्थ भी साकूत (साभिप्राय) मानकर कवि ने वाच्य प्राय मान लिया।

लोकप्रवादानुकारी लोकोक्तिः ॥ ७० ॥

लोक प्रवाद के समान लोकोक्ति है ॥ ७० ॥

यथा—

आपातप्रणयातिमात्रहृतयानालोचयन्त्या पतिं
चित्तं न्यासि यया मया त्वयि शठे साहं विहेयाधुना।
को वा पर्यनुयुज्यते वद परः किं वा त्वदावेदितै-
र्नेत्रे विध्यति यो हि तस्य पुरतोऽकिञ्चित्करं रोदनम् ॥

सहसा अतिशय प्रेमवश हृत जिस मैंने पति की चिन्ता किये बिना तुझ शठ से हृदय लगाया वही मैं अब त्याग के योग्य हो गयी हूँ। बोलो दूसरा कौन इसका उत्तर देगा और तुम्हारे कथनों का क्या भरोसा ? जो नेत्रों का वेधन करे उसके समक्ष रुदन व्यर्थ है।

अर्थान्तरगर्भा लोकोक्तिरेव छेकोक्तिः ॥ ७१ ॥

अर्थान्तर से युक्त लोकोक्ति ही छेकोक्ति है ॥ ७० ॥

यथा—

सहचरि ! शरत्कालीनेयं वतायतकौमुदी
हृदयनियमो रत्याः पत्या प्रसह्य न सह्यते।
तदभिसरणं तस्यैवास्मिन्ननेहसि युज्यते
कथय कलभाः केनोप्यन्ते निहत्य मृगानिह ॥

हे सखि, शरत्काल की यह विस्तृत कौमुदी पति से अनुरक्त हृदय नहीं सह पा रहा है। इसलिये इस समय पति के प्रति अभिसरण ही उचित है। बोलो, मृगों को मार कर हस्तिशावक कौन जिता रहा है।

अत्र तुर्यपादे लोकोक्तिः। मृगशब्दस्यान्वेषकव्यञ्जकतया पिशुनानादरो व्यङ्ग्यः।

यहाँ चतुर्थ चरण में लोकोक्ति है। मृग शब्द के अन्वेषक व्यञ्जक होने के कारण क्रूर अनादर व्यंग्य है।

[1]श्लेषेण यथा—

अब्दोऽभ्यागमनावधिः सुतनु ! मे संयोगविश्लेषयो-
र्नैयत्याद्वचसां कुतः प्रियतम ! प्रस्ताव एतादृशाम् ।
[2]स्थैर्य्यं नन्वित एव निश्चितमुरीकार्यं मृगाक्षि ! त्वया
निघ्नत्वे मदनस्य सत्यसति वा प्राणेश ! तद्व्याहतम् ॥

जैसे श्लेष वक्रोक्ति—

हे सुन्दर शरीर वाली ! एक वर्ष मेरे आने की अवधि है । हे प्रियतम ! संयोग और वियोग की कोई सीमा नहीं । अतः ऐसे वचनों का प्रस्ताव कैसा ? हे मृगनयनि ! तुम्हे अवश्य ही स्थिरता करनी चाहिए । हे प्राणेश ! कामदेव के नष्ट होने या नहीं होने पर स्थिरता समाप्त है ।

(श्लेष वक्रोक्ति के उदाहरण के पूर्व वक्रोक्ति लक्षण देना प्रासङ्गिक है । उसका लक्षण इस प्रकार है—"एकेन अभिप्रायेणोक्तं वाक्यं यद्यन्येनान्याभिप्रायकं कल्प्यते तदा वक्रोक्तियोगाद्वक्रोक्तिः ।" एक अभिप्राय से कहा गया वाक्य यदि अन्य से अन्य अभिप्राय की कल्पना प्रस्तुत करता है तो वक्रोक्ति योग से वक्रोक्ति होती है । श्लेष में भी अविकृत श्लेष वक्रोक्ति होती है । प्रस्तुत उदाहरण में "अब्दोऽभ्यागमन" पद में अविकृत श्लेष वक्रोक्ति है ।)

अत्र वर्षोत्तरमागन्तव्यमिति नायकतात्पर्य्यम् । नायिकया तु अब्दपदस्य मेघार्थकत्वम् अवधिपदस्यापादानार्थकत्वं च विवक्षित्वा मेघादागत इति तदर्थं कल्पयित्वा विभागस्य संयोगपूर्वकत्वान्मेघसंयोगाभावे तव तस्मादागमनमनुपपन्नमित्युक्तम् ! नायिकया स्थैर्यपदेन नायकाभिमतं द्वितीयक्षणनाशाभावरूपं च स्थैर्य्यमभिप्रेत्य मदनपारतन्त्र्ये सति विश्लेषदुःखमावश्यकम् तदभावे तु सौगतत्वापत्त्या स्थैर्य्यस्वीकरणमनुपपन्नम् तस्य क्षणभङ्गवादित्वादित्युक्तम् ।

इस उदाहरण में 'एक वर्ष के बाद आऊँगा' यह नायक का तात्पर्य है । नायिका ने तो अब्दपद का मेघार्थकत्व और अवधि पद का अपादानार्थकत्व विवक्षित

---

१. इतः पूर्वं वक्रोक्तेर्लक्षणमपेक्षितं तत् त्रुटितं भाति । तल्लक्षणं च–एकेनान्याभिप्रायेणोक्तं वाक्यं यद्यन्येनान्याभिप्रायकं कल्प्यते तदा वक्रोक्तियोगाद्वक्रोक्तिः । सा च श्लेषेण काक्वा वा । श्लेषेऽप्यविकृतश्लेषवक्रोक्तिर्विकृतश्लेषवक्रोक्तिरिति । अत्र "अब्दोऽभ्यागमन" इत्यत्राविकृतश्लेषवक्रोक्तिः "व्रतापलापम्" इत्यत्राविकृतश्लेषवक्रोक्तिर्बोध्या ।

२. पक्षे इतः कामत इत्यर्थः ।

कर; 'मेघ से आया'' यह कल्पित कर विभाग के संयोगपूर्वक होने के कारण मेघ संयोगाभाव में ''तुम्हारा आना असम्भव है''—ऐसा कहा। नायिका के द्वारा स्थैर्यपद से नायकाभिमत द्वितीय क्षणनाशाभाव रूप स्थैर्य समझकर कामदेव के परतन्त्र होने पर वियोग दुःख आवश्यक है। उसके अभाव में सौगतत्वापत्ति से स्थैर्य स्वीकरण अनुपपन्न है, उसके क्षणभङ्गुरत्व के कारण ऐसा कहा है।

किञ्चिदंशत्यागेन यथा—

व्रतापलापमादत्ते तत्क्षतित्रासवाञ्जनः।
प्रियैवमेव वच्मि त्वां सर्वाग्र्यञ्जनं विना॥
स्वक्रोधचिह्नं गोपयन्त्यां प्रियायां पूर्वार्द्धं नायकस्योक्तिः।
[1]तदपरं रतापलापं त्वमेव करोषीत्यर्थकतया तयोक्तम्।

कुछ अंश त्याग से। यथा—

यहाँ पूर्वार्द्ध में अपने क्रोध चिह्न को छिपाती प्रिया के प्रति नायक की उक्ति है। इसके अतिरिक्त ''रतापलाप तुम्हीं करते हो'' इत्यर्थकतावश उसने कहा।

काका यथा—

परपुष्टगिरः प्रमाणनीया दयितोक्तीरवमत्य किं त्वयैवम्।
इदमेव वचः सखि! स्वकीयं मम सन्देशतया नयापि तस्मै॥

काकु से यथा—

प्रिया के कथन को इस प्रकार के उपेक्षित कर क्या तुम्हें दूसरे के कथित वचन को मानना चाहिये। हे सखि! यही वचन मेरा सन्देह मानकर उससे भी कह देना।

प्रियानुनयेन मानमपरित्यजन्त्या पिकशब्देन तत्परित्यागो नार्ह इति सखीवाक्यार्थः। स्वप्रियाया अन्यनायिकाया उक्तीरनादृत्य परस्यां तद्भिन्नायां मयि पुष्टा दाक्षिण्यमात्रेण प्रयुक्ता गिरः किं त्वया प्रमाणनीया अपि तु नैवेति नायिकातात्पर्य्यम्।

प्रिया के अनुनय से मान को नहीं छोड़ने वाली का पिकशब्द से उसका परित्याग योग्य नही है यह सखी के वाक्य का अर्थ है। अपनी प्रिया दूसरी नायिका की उक्तियों का अनादर करके उससे अतिरिक्त दूसरी मुझमें पुष्ट दाक्षिण्यमात्र से प्रयुक्त वाणी क्या तुम्हें प्रमाण में कहनी है, अपितु नहीं ही कहनी है यह नायिका का तात्पर्य है।

नाम्नामवयवार्थान्तरकल्पनं निरुक्तिः॥ ७३॥

---

१. तदपर्व इति पाठोऽपेक्षितः। वकाररहितमिति तदर्थः।

नाम के अवयवार्थान्तर की कल्पना करना निरुक्ति है।

यथा—वृक्षावतंस ! सहकार ! वसन्तलक्ष्मी-
सर्वस्व ! दुष्प्रसह ! भामतिलङ्घ्य सौरीम्।
यद्भासि चक्षुषि जनस्य वियोगभाज-
स्तेनातिसौरभ इति स्फुटसंज्ञकोऽसि ॥

जैसे—हे वृक्षावतंस, सहकार, वसंत लक्ष्मी के सर्वस्व, दुष्प्रसह, सौरी प्रभा को उल्लंघन करके वियोगी जन के नेत्र में जो भासित होते हो इसी कारण अतिसौरभ इस नाम से प्रसिद्ध हो।

सूर्यस्येयं सौरी सौरी चासौ भा च सौरभा तामतिक्रान्तोऽतिसौरभः ततोऽपि (प्रचण्ड इति) यावत्। इदं पदभङ्गेनोदाहरणम्। अतिशयितं सौरभं यस्येति तदर्थप्रसिद्धेः।

यहाँ सूर्य से सम्बन्धित सौरी और सौरी जो प्रभा वही सौरभा और उसको अतिक्रमण करने वाला अतिसौरभ, अर्थात् उससे भी प्रचण्ड। यह पदभङ्ग का उदाहरण है। अतिशय सौरभ है जिसका यह इसका प्रसिद्ध अर्थ है।

अभङ्गेन यथा—

असमाः शरा रतिपतेर्वैलक्षण्याच्छरान्तरापेक्षात्।
सङ्ख्यावैषम्यादिति पुनरनुभूत्या विसम्वादि ॥

असमाः शरा यस्येत्यसमशरः इति कामनामधेयम्। तत्रासमत्वं पञ्च-सङ्ख्यत्वं पीडाविशेषानुपपादकत्वेन दूषयित्वा शरान्तरापेक्षयाधिकदुःख-जनकत्वरूपमसमत्वं व्यवस्थापितम्।

अभङ्ग से यथा—

दूसरे बाणों से विलक्षण होने के कारण कामदेव के बाण असम हैं। संख्या में विषय (अर्थात् पाँच होने से) की अनुभूति से यह उक्ति वञ्चनापूर्ण है। असम शर हैं जिसके वह असमशर कामदेव का नाम है। असमशर में असमत्व पञ्चसंख्यात्व को पीड़ा विशेष के अनुपपादकत्व के कारण दूषित करके अन्य बाण की अपेक्षा अधिक दुःखजनकत्व रूप असमत्व को बताया है।

अन्यार्थाभिप्रायो निषेधो निषेधः ॥ ७४ ॥

अन्य अर्थाभिप्राय का निषेध निषेध अलङ्कार है।

यथा—न बिभीहि ममोपकण्ठमेतुं न च जिहीहि विभाव्य पूर्ववृत्तम्।
दयिता तव सा भवत्यहं किं भवताहं निकृतास्मि सास्मि किं वा ॥

जैसे :—मेरे कण्ठ के समीप आने में भय मत करो पूर्ववृत्त का स्मरण कर परित्याग मत करो, तुम्हारी वह दयिता है, मैं तिरस्कृत हूँ या वही हूँ।

अल्पेऽपराधे परकीयया तिरस्कृतं नायकं प्रति स्वकीयोक्तिः। तस्यां स्वभेदस्य स्वस्मिंस्तद्भेदस्य च सत्त्वात्तद्वचनमनुपयुक्तं सत् तस्यां तदपराधासहिष्णुत्वं [1]च व्यञ्जयति।

थोड़ा अपराध करने पर परकीया के द्वारा तिरस्कृत नायक के प्रति यह स्वकीया की उचित है। उस नायिका में अपने भेद के और अपने में उसके भेद के होने के कारण वह कथन अनुपयुक्त होता हुआ उसमें (नायिका में) उस अपराध के असहिष्णुत्व को व्यञ्जित करता है।

तादृशं विधानं विधिः ॥ ७५ ॥

वैसा विधान विधि है।

यथा—कान्ताकुचाकलितकुङ्कुमसङ्करेण
वक्षोऽनुरञ्जितमिदं विषहे समक्षम्।
चित्रं तथापि पिदधासि निजापराधं
किं वा विधेयमथ वा मम वल्लभोऽसि॥

अत्र वल्लभे वल्लभत्वविधानं ममानन्यगतिकत्वान्मिथ्याभूतमपि त्वदुक्तं मन्तव्यमेवेत्यत्र पर्य्यवसन्नम्।

यहाँ वल्लभ में वल्लभत्व विधान मेरे अनन्यगतिकत्व के कारण मिथ्याभूत भी तुम्हारा कहना मानना ही है—यह निर्धारित है।

कार्यस्य कुतश्चिदसम्भवाभिधानमसम्भवः ॥ ७६ ॥

कार्य का कहीं से असम्भव हो जाने का कथन असम्भव अलङ्कार होता है।

व्यापारा हितहेतवः सहचरीव्यूहेहिता हेलिता
यस्यानि समर्थितानि वचनान्यायस्यतः प्रेयसः।
को नामाकलयेदयं दृढतरारूढिं समारूढिवा-
न्मानः कोकिलकूजितैः कलकलाकारैर्निकारिष्यते॥

हित साधन व्यापार सहचरीव्यूह में हित की हेलना आया प्रिय के संयुक्त वचन जिसके द्वारा समर्थन न हो समारूढिवान् कौन दृढतरारूढिको कौन आकलन करे, कोकिलो के कलकलाकारात्मक कूजन मानकर हटायेगा।

इतरनिषेधफलकं वचनं परिसङ्ख्या ॥ ७७ ॥

दूसरों से निषेध कर (हटा कर) एक जगह स्थापित करने वाला परिसंख्या अलङ्कार होता है ॥ ७७ ॥

(इतरनिषेधो वाच्यो व्यङ्ग्यश्च।)

इतर निषेध वाच्य और व्यंग्य दो प्रकार का होता है।

---

१. अत्र 'स्वस्मिंस्तत्सहिष्णुत्वं' इत्यपेक्षितं चकारानुरोधात्।

वाच्यो—वर्षासु रजोयोगः सरित्सु निर्भाति न हरित्सु।
सुन्दरि सचन्द्रकमिदं केकिकुलं नान्तरिक्षतलम्॥[1]

वर्षा में रजो योग (धूल) सरिताओं में अच्छा लगता है हरियाली भरी भूमि पर नहीं। 'हे सुन्दरि! चन्द्रमायुक्त यह केकियों का समुदाय है—अन्तरिक्ष नहीं।

व्यङ्ग्यो यथा—

अङ्गुलीष्वहृदयाक्षरमुद्राचापलं घनमिदं प्रतिभाति।
तीक्ष्णता कररुहस्य शिखायां मत्तकाशिनि! विभाति भवत्याः॥

हे मत्तकाशिनि! आपकी अंगुलियों में यह हृदयानवस्थ अक्षर मुद्रा चापल धन रूप में प्रतिभात हो रही है, करकमल की शिखा में तीक्ष्णता व्यक्त हो रही है।

[2]उत्तरकारणोक्तिः कारणमाला॥ ७८॥

पूर्व-पूर्व हेतु में उत्तर कारण कथन कारणमाला अलङ्कार है॥ ७८॥

यथा—तारुण्याद्भवति मदो मदात्परेषामाभाति प्रतिपदमप्रयोजकत्वम्।
एतस्मात्तदवमतिस्तयेतरेषां विद्वेषः सुतनु! ततो निजापकर्षः॥

हे सुन्दर शरीर वाली! तारुण्य से मद, मद से दूसरों का प्रतिपद अप्रयोजकत्व रूप में भान हो रहा है, इससे तुम्हारा अवमान है, और अवमान से विद्वेष, अविद्वेष से अपना अपकर्ष होता है।

परस्परोपकारकथनमन्योऽन्यम्॥ ७९॥

परस्पर उपकार कथन अन्योऽन्यालङ्कार है॥ ७६॥

यथा—यौवनेन तनुवीरुदद्भुता यौवनं च तनुवीरुधा तव।
भासते मधुमवाप्य माधवी रोचते मधुरुपेत्य माधवीम्॥

जैसे :—यौवन से अद्भुत तनुलता और तुम्हारी तनुलता से यौवन शोभायमान है, माधवी मधु को प्राप्त कर शोभायमान होती है, मधु माधवी को प्राप्त कर शोभायमान होता है।

उत्तरे एव प्रश्नोन्नयनमुत्तरम्॥ ८०॥

उत्तर में प्रश्न का उन्नयन उत्तर है॥ ८०॥

यथा—आरज्यत्तपनीयगौरवपुषां प्रेयोवियोगानलो-
त्तप्तानामवलोकिनो मृगदृशामुद्योतचन्द्रद्विषाम्।[3]

---

१. रजः रेणुः आर्तवं च। चन्द्रकः मेचकः शशी च।

२. अत्र 'पूर्वे पूर्वे' इत्यपेक्षितम्। "कारणमाला प्रोक्ता पूर्वे पूर्वे यथोत्तरं हेतौ" इत्यलङ्कारमुक्तावल्यादौ तथैवोक्तेः।

३. 'अवलोकिन' इत्यस्य 'व्याधा' इत्यनेन सम्बन्धः।

दावोपद्रवशङ्कया परिहृतारण्यप्रयाणोद्यमा
यद्व्याधः सखि ! भाग्यजृम्भितमिदं पल्लीभुवां सुभ्रुवाम् ॥

जैसे :—हे सखि ! प्रिय वियोगाग्नि से उत्तप्त शोभायमान तपनीय गौर शरीर वाली का प्रकाशमान चन्द्रद्वेषी मृगनयनी का अवलोकनकर्ता व्याधा सुन्दर भौओं वाली की कुटिया को छोड़ कर चला गया है।

[1]अत्र व्याधीं प्रति कस्यचिदुपनायकस्यार्थे तव पतिर्घनं गतो न वेति सख्याः प्रश्नोऽवगम्यते।

इस पद्य में व्याधी को उद्दिश्य कर किसी उपनायक के लिए सखी जिज्ञासा कर रही है कि तुम्हारा पति बन गया या नहीं—यही प्रश्न अवगत हो रहा है।

सति प्रश्नेऽसकृदपूर्वोत्तरकथनमप्युत्तरम् ॥ १ ॥

प्रश्न होने पर पुनः पुनः अपूर्व उत्तर कथन भी उत्तरालङ्कार है ॥ १ ॥

यथा—कश्चन्द्रो वरतनु ! तावकीनमास्यं
किं बिम्बं सुतनु ! रदच्छदं त्वदीयम्।
का वीणा प्रणयिनि ! कण्ठकन्दली ते
को मेरुः कमलमुखि ! स्तनस्तवायम् ॥

जैसे :—हे शोभनतनु ! चन्द्र कौन है ? तुम्हारा मुख, हे सुतनु ! बिम्ब क्या है ? तुम्हारा ओष्ठ। हे प्रणयिनि ! वीणा क्या है ? तुम्हारी कण्ठग्रीवा। हे कमलमुखि ! मेरु कौन है ? तुम्हारा यह स्तन ॥

वस्त्वन्तरगुणनिमित्तकः स्वगुणत्यागस्तद्गुणः ॥ ८१ ॥

अन्य वस्तु के गुण के साधन के लिए अपने गुण का त्याग तद्गुण अलङ्कार है॥८१॥

यथा—भवनं तपनीयमयं चम्पकमयमखिलमपि कुसुमम्।
कुङ्कुममयमनुलेपनमाभाति भवत्प्रभाभारैः ॥

तुम्हारी कान्ति के धारण से भवन स्वर्णमय है, सभी कुसुम चम्पकमय है, अनुलेपन केशरमय भान हो रहा है।

अत्र विजातीयवर्णानां देहप्रभासम्बन्धः।

यहाँ विजातीय वर्णो का देहप्रभा से सम्बन्ध है।

तादृशः स्वगुणातिशयोऽनुगुणः ॥ ८२ ॥

अपने गुणों का वैसा अतिशय अनुगुणालङ्कार है ॥ ८२ ॥

यथा—खञ्जननयने ! पुञ्जीभवदञ्जनमञ्जुलैरधुना।
मालिन्यमाकलयति द्वैगुण्यं गगनगामिजीमूतैः ॥

---

१. व्याधीं व्याधस्त्रियम्।

जैसे :—हे खञ्जन के समान नेत्र वाली ! इस समय पुञ्जीभूत तुम्हारे अञ्जनों के सौन्दर्य से आकाशगामी मेघों से मालिन्य की द्विगुणता का आकलन करता है ॥

अत्राकाशवृत्तेर्मालिन्यस्य मेघयोगादुत्कर्षः ।

प्रकृत में आकाश में रहने वाले मालिन्य का मेघयोग से उत्कर्ष होता है ।

पुनः स्वगुणप्राप्तिस्तादृश्येव पूर्वरूपम् ॥ ८३ ॥

पुनः अपने गुण की प्राप्ति वैसा ही पूर्वरूप अलङ्कार है ॥ ८३ ॥

यथा—त्वत्पाणिपल्लवरुचा वरगात्रि ! मुक्ता-
दामापि लोहितपदं प्रतिपद्य सार्थम् ।
सद्यः समागमवशात्स्मितकौमुदीनां
दीनायते न किमपि स्वगुणोदयस्य ॥

हे शोभनगात्रि ! तुम्हारे हस्तकमल की कान्ति से मोती की माला भी लोहित स्वरूप को प्राप्त कर सार्थक है, मन्द मुस्कान कान्ति के सद्यः सम्बन्ध से श्वैत्य प्राप्ति से कुछ भी हीनता को नहीं प्राप्त करता है ।

अत्र करकान्त्या प्राप्तारुण्यस्य स्मितप्रभया श्वैत्यापत्तिः ।

यहाँ पर करकमल की कान्ति से प्राप्त जो मुक्ता में लालिमा है उसने मन्द मुस्कान की कान्ति से श्वैत्य को प्राप्त किया है ।

अवस्थाभेदेऽपि पूर्वावस्थासाम्यमन्यत्पूर्वरूपम् ॥ १ ॥

अवस्था के भेद होने पर भी पूर्व अवस्था का साम्य अन्य पूर्वरूप अलङ्कार है॥१॥

यथा—अग्निशिखावृतदेहा सदैव सा नयनमुद्रयाकुलिता ।
अयि याति त्वद्विरहापत्तावपि पान्थ ! पूर्वदशाम् ॥[1]

हे पान्थ ! विरहाग्नि या केशर से आवृत होने पर सदा ही नयन मुद्रा से आकुलित तुम्हारे विरह के रहने पर भी पूर्व अवस्था को प्राप्त करती है ॥

अत्र श्लेषवशादवस्थाद्वयैकरूप्यम् ।

श्लेष के कारण दोनों अवस्था की एकरूपता है । अर्थात् काश्मीर केशर से आवृत देह है, या विरहानल परिव्याप्त-शरीर होने पर भी एक रूपता है ।

अन्यगुणापसङ्क्रमोऽतद्गुणः ॥ ८४ ॥

अन्य गुणों का असम्बन्ध अतद्गुण अलङ्कार है ॥ ८४ ॥

यथा—मृगमदचन्दनकुङ्कुमपङ्कैरपि सङ्करापन्ना ।
वरतनु ! तव तनुवीरुत्काञ्चनपाञ्चालिकैवेयम् ॥

---

१. अग्निशिखा विरहानलज्वाला, अग्निशिखं कुङ्कुमम् । अथ कुङ्कुमम् । काश्मीरजन्माग्निशिखम् । इत्यमरः ।

हे सुन्दरगात्रि ! कस्तूरी चन्दन केशर के पङ्कों से साङ्कर्य्य प्राप्त कर तुम्हारी यह तनुलता सुवर्ण या मालिका ही है ।

अत्र विजातीयवर्णानुलेपनयोगेऽपि देहस्य स्वगुणतादवस्थ्यम् ।

प्रकृत में विजातीय वर्णों अर्थात् कृष्णवर्णा कस्तूरी आदि के लेपन से भी देह की जो अपना कनक कान्ति है—वह अवस्थित है ॥

गुणसाम्याद्भेदानवभासो मीलितम् ॥ ८५ ॥

गुण के साम्य से भेद की प्रतीति न होना मीलित अलङ्कार है ॥ ८५ ॥

यथा—भावितमपि भवदीये तापिततपनीयकमनीये ।
काश्मीरपङ्कलेपं कलेवरे नावकलयामः ॥

तपाये हुए सुवर्ण के समान सुन्दर तुम्हारे इस शरीर में किया गया काश्मीर पङ्क का लेप प्रतीत नहीं हो रहा है ।

हेत्वन्तरेण भेदप्रतीतिरुन्मीलितम् ॥ ८६ ॥

अन्य साधन से भेद की प्रतीति उन्मीलित अलङ्कार है ॥ ८६ ॥

यथा—रदनच्छदभाभराभिभूतस्तरुणि ! व्यक्तमलक्तकद्रवोऽयम् ।
दशनद्युतिभिर्निवेदनीयः सरसं केसरसन्निवेशभाग्भिः ॥

जैसे :—हे तरुणि ! दन्तच्छद अर्थात् ओष्ठ की कान्ति से अभिभूत यह व्यक्त लाक्षारस नागकेसर के सन्निवेश से युक्त दाँत की कान्ति से पूर्ण होने से सरस है ।

विजातीयव्यक्तितादात्म्यप्रत्ययः सामान्यम् ॥ ८७ ॥

विजातीय व्यक्ति से तादात्म्य प्रत्यय सामान्यालङ्कार है ॥ ८७ ॥

यथा—चाम्पेयमालिकोरसि तव तनुभासैव लम्भिताभिभवम् ।
मिलितापि मीलितेयं मिलिन्दमालेन्द्रनीलगुलिकाभिः ॥

जैसे :—चम्पा की माला के मध्य में तुम्हारी तनुकान्ति ही अभिभव प्राप्त करती है, मरकतमणि समूह से मिलकर यह मिलिन्द माला ही है ।

हेत्वन्तरेण तत्प्रमा[2] विशेषकम् ॥ ८८ ॥

अन्य हेतु से विजातीय व्यक्ति तादात्म्यापन्न प्रकृत की यथार्थ प्रतीति विशेषक है ॥ ८८ ॥

यथा—कङ्केलिकिशलयोपरि पिहितं तव पाणिमरुणिम्ना ।
रणरणकङ्कणगणोद्गुणच्छणत्करणमेव विगणयति ॥

अशोक वृक्ष के पल्लव पर विहित तुम्हारे हाथ की लालिमा से रणरण ध्वनि-युक्त कङ्कणसमूह के गुणाधान से शब्दकरण ही विगणित होता है ।

---

१. अपसङ्क्रमः = असम्बन्धः ।

२. तत्प्रमा=तस्य विजातीयव्यक्तितादात्म्यापन्नस्य प्रकृतस्य प्रमा ।

कारणान्तरसमवधानात्कार्यसौकर्य्यं समाधिः ॥ ८९ ॥

अन्य कारण के समवधान में कार्य का सौकर्य समाधि है ॥ ८९ ॥

यथा—पयोधरपिधानतां गमितयोरराल भ्रुवोः
भजामि भुजवीरुधोरपनयाय यावत्स्पृहाम् ॥
कुशेशयतया धियं कलयता कुलेनालीनां
व्यधीयत तदानने किमपि तावदास्कन्दनम् ॥

जैसे :—कुटिल भौओं वाली की भुजलताओं से स्तनों को ढाकने के लिए प्रयास किये जाने पर उसको हटाने की इच्छा करता हूँ, तभी भ्रमर समूहों के द्वारा कमल की बुद्धि से उसके मुख पर आक्रमण कर दिया गया ॥

इष्टादधिकलाभः प्रहर्षणम् ॥ ९० ॥

इष्ट से अधिक लाभ प्रहर्षण अलङ्कार है ॥ ९० ॥

यथा—सुतनुमनुसमाजमाजिहानामहमगमं समहं दिदृक्षमाणः ।[1]
जनसमुदयनोदनादशङ्कं स्वयमनया भुजपञ्जरेण बद्धः ॥

हे सुतनु ! मानव समाज को छोड़ने के लिए मैं उत्सव को देखता हुआ जन-समुदय की प्रेरणा से इसके द्वारा स्वयं निःशङ्क भुजपञ्जर से आबद्ध हो गया ॥

विरुद्धप्राप्तिर्विषादनम् ॥ ९१ ॥

विरुद्ध प्राप्ति विषादन है ॥ ९१ ॥

यथा—आयाति वल्लभतमेऽभिमुखं मृगाक्षी
यावन्निभालयति सस्मितमास्यमस्य ।
तावद्विपक्षरमणीवदनारविन्द-
दत्तां ददर्श नवयावकरागमुद्राम् ॥

प्रिय के आने पर मृगनयनी मुस्कान के साथ अपने मुख को उसके सम्मुख करती है, उसी क्षण विपक्ष रमणी के मुख कमल से प्रदत्त नूतन लाक्षा के राग के चिह्न को देखा ।

आधाराधेययोरेव परस्पराधिक्यमधिकम् ॥ ९२ ॥

आधार और आधेय में ही परस्पर आधिक्य अधिक अलङ्कार है ॥ ९२ ॥

यथा—कौमुद्यामुद्यतायां विशदयितुमिदं दिक्कदम्बं पदानि
न्यस्यन्त्याः केलिकुञ्जाभिमुखमभिमतासादने सादरायाः ।
अद्वैतापन्नपुष्पायुधविविधसमुल्लासपुण्यास्तरुण्याः
धारावाहिस्पृहाया मुद उदयभृतो मानसे नैव मान्ति ॥

---

१. समहं सोत्सवम् ।

दिशाओं को उद्भासित करने के लिए चन्द्र ने किरणों के उद्यत होने के समय केलिकुञ्ज की ओर अभिमत स्थान पर सादर चरणपात के समय अद्वैतापन्न कामदेव के विविध समुल्लास से सुखी तरुणी की धारावाहिक अभिलाषा जन्य उदित आनन्द मन में नहीं समा पा रहा है ॥

अत्राऽऽधेयस्याधिक्यम् ।[1]

इस पद्य में आधेयभूत स्पृहा जन्य आनन्द का आधिक्य है ॥

विरोधिपक्षापकारः प्रत्यनीकम् ॥ ९३ ॥

विरोधी पक्ष का अपकार प्रत्यनीक अलङ्कार है ॥ ९३ ॥

यथा—अधिवासरमात्मनोऽभिभूतिं मिहिरेणोपहितामिवासहित्वा ।
विजितं जलजं प्रिये ! त्वदीयाननतादात्म्यवता सुधाकरेण ॥

जैसे :—हे प्रिये ! मिहिर के द्वारा निर्दिष्ट यज्ञारम्भ पूर्व दिन में अपने अभिभव को सहन न कर तुम्हारे मुख के साथ तादात्म्य धारण कर सुधाकर ने कमल को जीत लिया ॥

सूक्ष्मादप्याधाराद्राधेयस्य सूक्ष्मत्वकथनमल्पम् ॥ ९४ ॥

सूक्ष्म आधार से आधेय की सूक्ष्मता का कथन अल्पालङ्कार है ॥ ९४ ॥

यथा—बालाया दिनयौवनाभिसरणेऽवश्यायबिन्दूपमा
याः स्वेदोदकविप्रुषः समभवन्वक्षोजयोरन्तरे ।
ता एव प्रियदर्शनोल्लसितयोर्मध्ये तयोः सङ्कटा-
दुत्सृज्य स्वदशां विशन्ति नलिनीनालोल्लसत्सूत्रवत् ॥

जैसे :—बाला के यौवन कालाभिसरण पर ओस कण के समान स्तनों के मध्य में जो पसीने के जल का उद्गम हुआ था, वे ही प्रिय के दर्शन से विकसित स्तनों के मध्य में अतिशय कठिनता से अपनी अवस्था का परित्याग कर नलिनी के नाल सूत्र के समान प्रविष्ट होते हैं ।

अत्र स्वभावपीवरयोः स्तनयोरन्तरस्य सूक्ष्मतया तदन्तर्वर्तिस्वेदकणानां सूक्ष्मत्वे तदपेक्षयापि स्तनान्तरसूक्ष्मत्वं स्तनोल्लासवशादुक्तं तेन स्वेदकणानां सूक्ष्मत्वसिद्धिः ।

यहाँ स्वभाव से स्थूल स्तनों के मध्यभाग के सूक्ष्म होने से उनके मध्य में स्थित स्वेदकणों के सूक्ष्म होने पर भी उसकी अपेक्षा भी स्तन मध्य की सूक्ष्मता का स्तन के उल्लास के कारण कहा गया है, इसलिए स्वेद कणों की अतिशय सूक्ष्मता सिद्ध होती है ।

---

१. आधारस्याधिक्ये 'अङ्के विदर्भेन्द्रपुरस्य शङ्के न सम्ममौ नैष तथा समाजः । यथा पयोराशिरगस्त्यहस्ते यथा जगद्वा जठरे मुरारेः' ॥ इति अलङ्कारकौस्तुभे उदाहृतम् ।

पूर्वपूर्वविशेषणानामुत्तरोत्तरं विशेष्यत्वोक्तिरेकावली ॥ ९५ ॥

पूर्व-पूर्व विशेषणों का उत्तरोत्तर के प्रति विशेष्यत्व कथन एकावली अलङ्कार है॥

यथा—सम्प्ररूढनवयौवनमङ्गं यौवनं जनितचित्तविकारम् ।
चञ्चलीकृतदृशोऽपि विकारा मानसं च गमयन्ति दृशोऽस्याः ॥

समुत्पन्न नवयौवन शरीर जनित चित्त विकार मानस यौवन, इसके नेत्र चञ्चलीकृत नेत्र के भी विकार की प्रतीति कराते हैं।

चमत्कारिस्मृतिः स्मरणम् ॥ ९६ ॥

चमत्कार पूर्ण स्मृति स्मरणालङ्कार है ॥ ९६ ॥

यथा—श्रमवारिपृषन्निषिक्तगण्डस्थलमालम्बितचूर्णकुन्तलास्यम् ।
पुरुषायितमायतेक्षणायाः श्वसितेन स्फुरिताधरं स्मरामि ॥

विशाल नेत्र की श्रम जनित जलकण से युक्त कपोल पर आलम्बित घुंघराले केशयुक्त मुख पुरुष के समान आचरणशील श्वास से कम्पित अधर का स्मरण करता हूँ ॥

रम्यभ्रमो भ्रान्तिमान् ॥ ९७ ॥

रम्य भ्रान्ति भ्रान्तिमान् अलङ्कार है ॥ ९७ ॥

यथा—दृक्पाते स्वकुलस्य मन्दहसिते किञ्जल्कराजेर्भ्रमाद-
प्रामाण्यमधुच्युतिश्रवणतो गन्धोपलब्धेरपि ।
पद्मत्वप्रतिपत्तिमाकलयता भृङ्गेण जैवातृक-
भ्रातृश्रीमुखि ! शेमुषी तव मुखं पातु समाधीयते ॥

हे चन्द्रकमलकान्तिमुखि ! मन्दहासयुक्त नेत्र किञ्जल्क समूह के भ्रम से असीम मधु प्रस्यन्दन के श्रवण से गन्ध की उपलब्धि से भी पद्मत्व की प्रतीति वाले भ्रमर की मोह युक्त बुद्धि तुम्हारे मुख रक्षण के लिए समाधानकर्ता है ॥

उपमानतिरस्कारः प्रतीपम् ॥ ९८ ॥

उपमान का तिरस्कार प्रतीप अलङ्कार है ॥ ९८ ॥

स च त्रिविधः । उपमेयेनोपमानस्यानर्थक्यम्, तस्योपमेयत्वकथनम्, उपमेयत्वस्यापि प्रतिषेधश्च । क्रमेणोदाहरणानि ।

प्रतीप अलङ्कार तीन प्रकार का है। उपमेय से उपमान का आनर्थक्य, उपमान का उपमेयत्व कथन और उपमेयत्व का भी प्रतिषेध। क्रम से इनके उदाहरण—

वाणी चेच्छ्रवणे कृतार्थयति तद्द्राक्षारसः क्षारव-[1]
न्निर्बन्धोऽपि मुधैव गन्धफलिकां प्रत्यङ्गमस्या यदि ।[2]

---

१. अत्र तच्छब्दस्य तर्हीत्यर्थः । एवं तृतीयचरणेऽपि ।

२. गन्धफलिकां चम्पककलिकां प्रति । 'अथ चाम्पेयश्चम्पको हेमपुष्पकः । एतस्य कलिका गन्धफली स्यात्' इत्यमरः ।

वक्त्रं चेदवलोक्यते तदफलोदर्का दिदृक्षा विधो-
र्वक्षोजौ यदि तर्हि गर्हिततमा मेरोरवाप्तिस्पृहा ॥

वाणी यदि सुनने से कृतार्थ करती है तब द्राक्षा का रस खारा है, इसका प्रत्यङ्ग देखने पर चम्पक कली व्यर्थ है। इसका मुख यदि देख लेता है तो चन्द्र के दर्शन की इच्छा निष्फल है। वक्षःस्थलों को देखने पर मेरु के प्राप्ति की स्पृहा हेय होती है ॥

रमणीयपदार्थसार्थपूर्णं भुवनं भावनया विभाव्य तस्याः।
वदनप्रतियोगिकोपमाया अनुरूपं शशिनं निरूपयामः ॥

रमणीय पदार्थ प्रयोजन विशिष्ट है यह भावना से विचार कर उसके मुख प्रतियोगिक उपमा के अनुरूप चन्द्रमा को निरूपित करते हैं ।।

विवेकवैकल्यमनेकशाखं कल्याणि ! पर्याकलनीयमेषाम्।
मुखेन पीयूषमयूखमब्जं दृशा रतिं ये तुलयन्ति तन्वा ॥

हे कल्याणि ! विवेक विकलतापूर्ण, अनेक शाखा युक्त क्षुधाकिरण और कमल को इसके मुख से नेत्र से और शरीर से रति की तुलना करते हैं, वह सर्वथा कथनमात्र है ॥

[1]आधारं विनापि वृत्तिर्विशेषः ॥ ९९ ॥

प्रसिद्ध आधार के विना भी वृत्ति विशेषालङ्कार है ॥ ९९ ॥

यथा—

[2]स्नेहस्य संवरणगोचरता रसाविर्भावो ऽनिरुद्धविषयः सुरताभिलाषः।
अप्यन्तरेण तपतीं जनकात्मजां वा बाणोद्भवामपि वसन्ति नवाङ्गनायाम् ॥

जैसे :—स्नेह का अजमीढ पुत्र संवरण विषयता शृङ्गारादि का आविर्भाव अप्रतिरुद्ध विषय या अनिरुद्ध बिषयक सुरताकाङ्क्षा तपती या जनक पुत्री एवं वाणोद्भवा उषा के बिना भी नवीन अङ्गना में होती है ।

गुप्त पृथिवी से जानकी के विना, उत्पत्ति अनिरुद्ध विषयक सुरत स्पृहा उषा के विना संवरण का स्नेह तपती के विना ही होना आधार के विना भी वृत्ति विवक्षित है।

---

१. अत्र आधारपदं प्रसिद्धाधारपरं बोध्यम्।

२. संवरणः अजमीढपुत्रः सूर्यदुहितुस्तपत्याः पतिः यस्मात्कुरोरुत्पत्तिः। तथा च श्रीभागवते नवमस्कन्धे द्वाविंशेऽध्याये—

योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः।
तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः ॥ इति। पक्षे संवरणं गोपनम्। रसाविर्भावः = पृथिव्याः सकाशादुत्पत्तिः शृङ्गाराद्याविर्भावश्च। अनिरुद्धविषयः = अनिरुद्धः प्रद्युम्नतनयस्तद्गोचरः पक्षे अप्रतिरुद्धविषयः।

एकस्य युगपदनेकत्र वृत्तिरपरो विशेषः ॥ १ ॥

एक की अनेकत्र एक साथ वृत्ति दूसरा विशेषालङ्कार है ॥ १ ॥

मानसे विरमसे न कदाचिल्लक्ष्यसे नयनयोरनुलग्ना ।
व्याहृतिं न विजहासि मुहूर्तं भाससे वपुषि सुभ्रु ! निषण्णा ॥

हे सुन्दर भौंवाली ! मानस में विराम ग्रहण करता है, कदाचित् नयनों में अनुलग्न लक्षित होता है, व्याहृति का परित्याग नहीं करती है, शरीर में स्थित मुहूर्त मात्र को व्यक्त होता है ।

एककार्य्येणानेककार्य्यसिद्धिरन्यो विशेषः ॥ २ ॥

एक कार्य से अनेक कार्य की सिद्धि अन्य विशेषालङ्कार है ॥ २ ॥

यथा—लावण्येन विलक्षणेन चरितैः साध्व्या असाधारणैः
कान्त्यां केनचिदद्भुतेन भवतीमातन्वता वेधसा ।
नीता लोचनगोचरं भुवि सतां पुष्पायुधप्रेयसी
वैदेही विहितान्यदेहसहिता विद्युत्कृता स्थायिनी ॥

साध्वी के विलक्षण लावण्य से असाधारण चरित्रों से अद्भुत किसी कान्ति से ब्रह्मा ने आपका निर्माण किया है, कामदेव की प्रेयसी विद्युत्स्वरूपा वैदेही को अन्य के शरीर के साथ स्थायी पृथिवी पर सज्जनों के लोचन का विषय बना दिया हैं ।

उत्तरोत्तरोत्कर्षः सारः ॥ १०० ॥

उत्तरोत्तर उत्कर्ष सार अलङ्कार है ॥ १०० ॥

यथा—सारं जन्तुषु मानुषं वपुरिदं नेत्रेन्द्रियाणीन्द्रिय-
ग्रामेऽमी विषयास्त्वमेषु सुमुखि ! त्वय्युद्धतं यौवनम् ।
लावण्यातिशयोऽत्र तत्र मदनस्तस्मिन्विलासोदय-
स्तस्मिन्नुन्नमितभ्रुवः स्मितभृतः साकूतदृग्भङ्गयः ॥

जैसे :—हे सुमुखि ! प्राणियों में यह मानव शरीर सार है, वहाँ इन्द्रिय समूह में नेत्र है, उनका तुम्हारा यह उद्धत यौवन ही विषय है, यहाँ लावण्य का अतिशयत्व है उसमें मदन है, वहाँ विलास का उदय है, उसमें उन्नमित भौंए हैं, मन्द-मुस्कान को धारण किये हुए सव्याज नेत्र भङ्गियाँ हैं ॥

कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वमसङ्गतिः ॥ १०१ ॥

कार्य और कारण में भिन्न देशत्व असङ्गति अलङ्कार है ॥ १०१ ॥

यथा—'त्वं श्यामा ज्वलति त्वयि मयि शशी रम्भोपमौ तावका-
वूरू जाड्यसमन्वयो मयि घनश्रीस्त्वं दृशोरम्बु मे ।

---

१. श्यामा रात्रिः अप्रसूता वनिता च । तथा च मेदिनी—
श्यामो वटे प्रयागस्य वारिदे वृद्धदारके ।

कुम्भत्वं बिभृतस्तवोरसिरुहौ शून्यान्तरत्वं तु मे
पाणौ ते तरुणि ! स्फुरत्यरुणता तापो मयीत्यद्भुतम् ॥[1]

तुम रात्रि हो और यह चन्द्रमा मुझ में जल रहा है, कदली के समान तुम्हारी जङ्घाएँ है, मुझ में जडता का समन्वय मेघ श्री तुम मेरे नेत्र की जल हो, तुम्हारे हृदय में उत्पन्न कुम्भत्व को धारण कर रहे हैं मेरा अन्तर शून्यता को धारण कर रहा है। हे तरुणि ! तुम्हारे हाथ में अरुणता सूर्यता का स्फुरण हो रहा है और मुझ में ताप हो रहा है—यह आश्चर्य हैं।

अन्यत्र चिकीर्षितस्यान्यत्र करणमपराऽसङ्गतिः ॥ १ ॥

अन्यत्र करने के लिए अभीष्ट का अन्यत्र कारण अपर असङ्गति है ॥ १ ॥

यथा—[2]सहावलेहं स्पृहयन्वयस्ते स्मरः सपत्नीजनमेवमाधात् ।
त्वदीक्षणस्य श्रवणाभिमुख्यमिच्छन्व्यधत्त स्वधनुर्गुणस्य ॥

जैसे :—तुम्हारी अवस्था सहास्वादन की स्पृहा करता हुआ तुम्हारा काम तुम्हारी सपत्नियों को इस प्रकार धारण किया कि तुम्हारे नेत्र को कान के आभिमुख्य की इच्छा करता हुआ अपने धनुष की डोरी बना लिया ॥

कार्यान्तरप्रक्तस्य तद्विरुद्धकार्यकरणमन्यासङ्गतिः ॥ २ ॥

कार्यान्तर प्रसक्त का उससे विरुद्ध कार्य करना अन्य असङ्गति अलङ्कार है ॥

यथा—नवीनवरवर्णिनीवदनचन्द्रमोमण्डले
विधातुमभिवाञ्छता किमपि नेत्रसंयोजनम् ।
निरूपय कुतूहलं प्रियतमेन नेत्रं मुखा-[3]
द्व्यधीयत विदूरगं करकुशेशयेन स्वयम् ॥

नवीन सुन्दरी के मुख चन्द्रमण्डल में किसी नेत्र संयोजक के विधान की इच्छा वाले प्रियतम ने मुख के वस्त्र को व्यवहित किया और स्वयं करकमल से उसे हटा दिया, उसने कुतूहल का निरूपण किया ॥

दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनं लेशः ॥ १०२ ॥

पिके च कृष्णहरितोः पुंसि स्यात्तद्वति त्रिषु ॥
मरीचे सिन्धुलवणे क्लीबं स्त्री शारिवौषधे ।
अप्रसूताङ्गनायां च प्रियङ्गावपि चोच्यते ॥
यमुनायां त्रियामायां कृष्णत्रिवृतिकौषधौ । इति ।

१. अरुणता सूर्यता रक्तवर्णता च 'अरुणः सूर्यभेदे स्याद्वर्णभेदेऽपि च त्रिषु' इत्यमरात् ।

२. सहावहेलं इति सहावलेशं इति वा पाठो भवेत् ।

३. नेत्रं वस्त्रम् 'स्याज्जटांशुकयोर्नेत्रम्' इत्यमरात् ।

दोष और गुण में गुण और दोष की कल्पना लेशालङ्कार है।

यथा—राजीवभ्रमभृति सुभ्रु ! भृङ्गयुगे त्वद्वक्त्रं रुजति कृतः प्रदीपभङ्गः।
विज्ञायाशयमपरं ययुर्वयस्याः सम्पन्नं रह इह दोषवैभवेन॥

जैसे :—हे सुभ्रु ! कमल भ्रमयुक्त भ्रमर समूह के द्वारा तुम्हारे मुख पर दंशन करने की स्थिति में प्रदीप बुझ गया, वयस्यों ने अन्य आशय समझ कर भ्रम से एकान्त सम्पत्ति से भ्रान्ति के दोषात्मक होने पर भी गुण के रूप में अभिधान किया है।

अत्र भ्रमराणां सखीनां च भ्रान्त्या एकान्तसम्पत्त्या भ्रान्तेर्दोषभूताया अपि गुणत्वेनाभिधानम्। (गुणस्य दोषत्वेनाभिधानम्)

गुण का दोष के रूप में कथन।

यथा—केतक्यो जनयन्ति ते दृशि रजोराजीभिरुच्चै रुजं
व्याधूता मरुता लताः किसलयैराघातमातन्वते।
सङ्केतस्थलमत्यतिव्यवहितं तुर्यांशशेषा निशा
[1]सोऽयं ते जघनस्तनस्य गुरुणो गौराङ्गि ! बोध्यो गुणः॥

जैसे :—हे गौराङ्गि ! केतकियाँ तुम्हारी आँख में रजःकण समूहों से अतिशय पीडा उत्पन्न कर रहे हैं, हवा से कम्पितलताएं किसलयों से आघात करते हैं सङ्केत-स्थल अतिशय व्यवहित है, रात्रि का चतुर्थांश शेष है, तुम्हारे जघन और स्तन की गुरुता का ही गुण समझना चाहिए॥

अत्र जघनस्तनगौरवस्य वस्तुतो गुणस्यापि शीघ्रगमनप्रतिकूलत्वा-द्दोषत्वेनोक्तिः।

प्रकृत में जघन और स्तनों की गुरुता वस्तुतः गुण का भी शीघ्र गमन के प्रति कूल होने से दोष रूप से कथन है॥

अन्यगुणदोषाभ्यामन्यदोषगुणकथनमुल्लासः॥ १०३॥

अन्य के गुण और दोष से अन्य का दोष और गुण का कथन उल्लास अलङ्कार है॥ १०३॥

यथा—यस्तव स्तनसरोजगुलुच्छे सङ्गतोऽपि वरवर्णिनि ! हारः।
भाति रागरहितः प्रतिवेलं तत्तदीयमहहाऽहृदयत्वम्॥

जैसे :—हे वरवर्णिनि ! तुम्हारे स्तन कमलों पर संयुक्त भी हार सदा राग-रहित रहता है, यह उसका अहृदयत्व ही है।

श्वश्रूरश्रुदुगमनजननी यातरो जातरोषाः
प्राचुर्य्येण प्रतियुवतयो रन्ध्रबद्धावधानाः।

---

१. जघनस्तनस्य इति प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावेन प्रयोगः।

दूरावस्थे हृदयदयिते सर्वमेतन्मृगाक्ष्याः
शीलं साक्षादनुगुणतया यामिकप्रायमासीत् ॥

मृगनयना की सास श्वासुओं की उत्पत्ति का कारण होती है, जाने वाला क्रुद्ध रहता है, प्रत्येक युवति विशेष रूप से छिद्र का अन्वेषण करने वाली होती है, पति के दूर जाने पर यही दशा होती है, शील साक्षात् अनुगुण होने पर भी पहरा देने वाला ही रहता है ॥

अन्यगुणदोषयोरप्रयोजकत्वकथनमवज्ञा ॥ १०४ ॥

अन्य के गुण और दोष का अप्रयोजकत्व कथन अवज्ञा अलंकार है ॥ १०४ ॥

यथा—अनया विहिते प्रियावमाने परितुष्यन्तु विपक्षसारसाक्ष्यः ।
गुणगौरवयोगयोग्यगर्वानुगुणं स्यादियतैव किं विधेयम् ॥

इसके द्वारा प्रिया का अपमान करने पर विपक्ष सार साक्षिगण सन्तुष्ट हो, गुण गौरव योग के योग्य अभिमान के अनुगुण होगा, इससे और क्या विधेय है ।

प्रतिसुभ्रुवामदभ्रा भवन्तु निःश्वासमातरिश्वानः ।
स्वगुणानुरूपमनया दयिततमो नमयितव्य एवायम् ॥

सुन्दर भौओं वाली के प्रतिकूल नायिकाओं का अनिल निःश्वास वायु हो, इसने अपने गुण के अनुरूप ही इस प्रियतम को नत करना चाहिए ।

गुणविशेषानुषङ्गाद्दोषस्य प्रार्थनमनुज्ञा ॥ १०५ ॥

गुण विशेष के सम्बन्ध से दोष की प्रार्थना अनुज्ञा अलंकार है ॥ १०५ ॥

यथा—मा विरम षट्पद ! दँश रदनच्छदमिन्दुवदनायाः ।
सरभससीत्कृतकरधुतिमयनविकाराः किमन्यथा प्रेक्ष्याः ॥

हे भ्रमर ! अब मत रुको, चन्द्रमुखी के ओष्ठ का दंशन करो; अचानक सीत्कारपूर्वक हाथ कम्पन और नयन के विकार को अन्यथा कैसे देखोगे ॥

[1]सम्बन्धानुरूप्यं समः ॥ १०६ ॥

सम्बन्ध की अनुरूपता सम अलंकार है ॥ १०६ ॥

(परस्पर सम्बन्ध के अनुरूपों में सम्बन्ध होना और यह सम्बन्ध सत् और असत् के भेद से दो प्रकार का है ।)

यथा—कामनीयकमनन्यसमानं बिभ्रतोर्गुणगणानगणेयान् ।
सङ्गमेन सदृशेन विधिर्वा नूनमप्रतिहतप्रतिपत्तिः ॥

जैसे :—सुन्दर अनन्य साधारण असंख्य गुणों को धारण करने वाले के सङ्गम से या सदृश से विधि निश्चय ही अप्रतिहत ज्ञान है ।

---

१. अनुरूपसम्बन्ध इत्यर्थः । परस्परसम्बन्धानुरूपयोः सम्बन्ध इति यावत् । स च सम्बन्धः सतोरसतोश्चेति द्विविधः समालङ्कारः ।

अत्र सतोर्योगः ।

यहाँ सत् का योग है ।

यथा वा—

हृदयाद्बहिर्निहितयोर्वैमुख्यभृतोर्नितान्तनिष्ठुरयोः ।
स्तनमौक्तिकदाम्नोरयमनुरूपो भवति सम्बन्धः ॥

अथवा जैसे :—

हृदय से बाहर निहित वैमुख्य धारण किये हुये निष्ठुर स्तन और मुक्ता-माला का अनुरूप ही सम्बन्ध होता है ॥

असत्त्वमारोपितं न तु वास्तवमित्यन्यदेतत् ।

असत्त्व आरोपित है वास्तव नहीं यह दूसरी बात है ।

अयोग्यसम्बन्धो विषमः ॥ १०७ ॥

अयोग्य सम्बन्ध विषमालंकार है ॥ १०७ ॥

यथा—

केयं नितान्तसुकुमारशरीरवीरुद्भीरुर्धवप्रहितवारिरुहासहिष्णुः ।
झञ्झानिलाभिहतवैद्युतहेतिदीप्तधारासु वारिदनिशासु च कोऽभिसारः ॥

अतिशय सुकुमार शरीर लता भीरु एवं उपरिस्थित वृक्षों को सहन करने में असमर्थ यह कौन है, झञ्झावात से अभिहत वैद्युत अग्नि दीप्त धाराओं में और इस वर्षा ऋतु की निशा में कैसा अभिसार है ।

अत्र द्वाभ्यां किम्पदाभ्यां तन्नायिकाव्यक्तेः तादृशाभिसारस्य च सम्बन्धानौचित्यं द्योत्यम् ॥

यहाँ दो किम्पदों से उस नायिका व्यक्ति को और वैसे अभिसार ही के सम्बन्धों के अनौचित्य का द्योतन करता है ॥

[1]इष्टप्राप्त्यभावविशिष्टानिष्टप्राप्तिरपरो विषमः ॥ १ ॥

इष्ट प्राप्ति का अभाव विशिष्ट अनिष्ट प्राप्ति दूसरा विषम अलंकार है ॥ १ ॥

इष्टप्राप्त्यभावमात्रं यथा—

बाले ! विलासालयजालरन्ध्रकृतप्रवेशान्विधुरश्मिदण्डान् ।
मृणालबुद्ध्या दशतो मरालकुलस्य दृश्यो विफलप्रयासः ॥

(यहाँ इष्ट प्राप्ति का अभाव और अनिष्ट प्राप्ति का मिश्रित प्रत्येक विषम अलंकार है । उदाहरण उसी रूप में दिये गये हैं ।)

इष्ट प्राप्ति का अभाव मात्र जैसे :—

---

१. अत्र इष्टप्राप्त्यभावानिष्टप्राप्त्योर्मिलितयोः प्रत्येकमपि विषमत्वं बोध्यम् । अलङ्कारकौस्तुभादौ तथैव प्रतिपादनात् । इहाप्युदाहरणानां तेनैव क्रमेण दत्तत्वात् ।

हे वाले ! विलास भवन के जाल छिद्र से प्रविष्ट चन्द्र किरण दण्डों को मृणाल बुद्धि से मराल समूह से उसके दंशन का प्रयास रूपी विफल प्रयास देखने योग्य है ॥

अनिष्टप्राप्तिमात्रं यथा—

श्रवणकोकनदं स्पृहयन्नयं तव कपोलतले निपतत्यलिः ।
न चलितुं वत पिण्डितकुङ्कुमद्रवनिबद्धपदः पदमप्यलम् ॥

अनिष्ट प्राप्ति मात्र यथा :—

श्रवण रूपी लाल कमल का स्पर्श करता हुआ भ्रमर तुम्हारे कपोल तल पर पतित होता है, पिण्डतल केशर द्रव निबद्ध चरण एक डेग भी चलने में असमर्थ है ।

उभयं यथा—

विस्रष्टं भूमिभागेऽभिसरणरभसादायताक्ष्याः सरस्या-
स्तीरे मञ्जीरमारादरुणमणिमयं भासमानं प्रभाभिः ।
चुम्बन्तश्चक्रवाका दिवसकरसमारम्भकालीनभास्व[1]-
द्बिम्बभ्रान्त्या भजन्ते रुजमतिरभसाद्भावयन्तोऽभिघातम् ॥

उभय जैसे :—

विशाल नेत्रा के शीघ्रता से अभिसार के कारण सरोवर के तट पर गिरे हुए लालमणिमय भासमान नूपुर की प्रभाओं से बाल सूर्य किरण की कान्ति के आगमन के भ्रम से पीडित चक्रवाक अभिघात का अनुभव करता है ॥

कार्यकारणयोर्गुणक्रियान्यतरविरोधेऽन्यो विषमः ॥ २ ॥

कार्य और कारण गुण और क्रिया में किसी एक का विरोध को अन्य विषम अलङ्कार कहा गया है ॥ २ ॥

यथा—तामरसकुसुमकिसलयचन्द्रमसां हिततमास्तवावयवाः ।
तेषु त्वं समवेता शिशिरे शिशिरेतरस्पर्शा ॥
वरवर्णिनि ! बाहुवल्लरीयं भवदीया भवतीह कण्टकारिः ।
जनितं परिरम्भणं तया मे मदनाजिह्मगकण्टकं हिनस्ति ॥

हे वरवर्णिनि ! कमल फूल के पत्ररूपी चन्द्रमा के हिततम तुम्हारे अवयव उनमें शिशिर में अन्य शिशिर स्पर्श समवेत तुम्हारी यह बाहुलता कण्टकारि हो रही है, इससे मेरा तुम्हारे साथ आलिङ्गन मदन वक्र कण्टक को नाश करता है ॥

उपादेयस्यापि कुतश्चिद्दोषात्तिरस्कारः······॥ १०८ ॥

उपादेय का भी किसी दोष से तिरस्कार ॥ १०८ ॥

यथा—प्रियान्यव्यावृत्तिः परिजनभयं स्वस्य विभुता

---

१. दिवसेति—दिवसकरस्य समारम्भकालीनम्=उदयकालिकं भास्वत् = दीप्तिमद् यत् बिम्बं तस्य भ्रान्त्या ।

गुणा भासन्तेऽमी सखि ! यदपि माने बहुविधाः ।
तथापि प्रारब्धप्रणयपरिपाटीषु विषया-
न्तराणां सञ्चारोऽनुपमपकर्षं ध्वनयति ॥

जैसे :—हे सखि ! यद्यपि अन्य प्रिया की व्यावृत्ति परिजनों का भय अपनी विभुता अनेक प्रकार के गुण भासमान होते हैं, तथापि प्रारब्ध प्रणय परिपाटियों में अन्य विषयों का सञ्चार अनुपम अपकर्ष ध्वनित करता है ॥

अत्र स्वोत्कर्षोपपादकस्यापि मानस्य प्रणयव्यवधायकत्वादनादरणीयत्वम् ।

अपने उत्कर्ष के उपपादक मान का प्रणय व्यवधायक होने से अनादरणीय है ।

कार्यान्तरहेतोस्तद्विरुद्धकार्ये जनकत्वं व्याघातः ॥ १०९ ॥

अन्य कार्य के साधन उसके विरुद्ध कार्य में जनकता विघात अलङ्कार है ॥१०९॥

यथा—

प्रेयोमनीषितनिराकरणप्रयत्नो बिम्बाधरस्फुरणमीक्षणवक्रभावः ।
अन्यत्र रागविहतेरनुमापकानि तानि त्वयि प्रणयितामनुमापयन्ति ॥

प्रेय के मन से अभीष्ट का निराकरण प्रयास बिम्बाधर स्फुरण ईक्षण की वक्रता, अन्यत्र राग विहति का अनुमापक तुम में प्रणयिता का अनुमापक है ॥

अत्र रागाभावानुमापकत्वेन प्रसिद्धानां रागानुमापकत्वम् ।

यहाँ रागाभाव के अनुमापक के रूप में प्रसिद्धराग का अनुमापक है ।

इष्टार्थविरुद्धे प्रयत्नो विचित्रम् ॥ ११० ॥

इष्टार्थ के विरुद्ध में प्रयत्न विचित्रालङ्कार है ॥ ११० ॥

यथा—विरोधिनीनां वरवर्णिनीनामपेक्षया स्वातिशयं विधातुम् ।
चित्रं कुरङ्गाक्षि ! गणं गुणानामनारतं स्वापचयं तनोषि ॥

जैसे :—हे बाल मृगनयनि ! अन्य विरोधी सुन्दरियों की अपेक्षा अपना अतिशय विधान के लिए अपने गुणों का सदा अपचय का विस्तार—यह आश्चर्य है ॥

अत्र स्वोत्कृष्टिमिच्छन्त्या गुणस्य स्वस्यापचयकरणं गुणापचयस्य स्वापकर्षहेतुत्वात् अविच्छेदेन स्वापचयो वृद्धिर्यस्येत्यविरोधः ।

अपमे उत्कर्ष की इच्छा करती हुई अपने गुण का अपकर्ष करना गुणों के उपचयत्व का अपने अपकर्ष का साधन होने से अविच्छिन्न रूप से स्व अपचय की वृद्धि जिसकी है इस रूप में अविरोध है ।

परस्परमनपेक्षमाणानामलङ्काराणामेकवाक्यवृत्तित्वं संसृष्टिः ॥ १११ ॥

परस्पर अनपेक्ष अलङ्कारों की एक वाक्यवृत्तिता संसृष्टि अलङ्कार है ॥१११॥

यथा—इयमिन्दुमुखी गुणं विपक्षप्रतिलोमं दधती तिलोत्तमायाः ।
स्वतनुप्रभया दिगन्तगामां तिमिराणामचिरान्निरासहेतुः ॥

जैसे :—तिलोत्तमा के विपक्ष प्रतिलोम गुण को धारण करती हुई यह इन्दुमुखी अपने शरीर की प्रभा से दिगन्तस्थ अन्धकारों को अविलम्ब निरास साधन है।

अत्रेन्दुमुखीत्युपमा, तिलोत्तमाया गुणं दधतीति निदर्शना, उत्तरार्द्धेऽसम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिः, एतेषां परस्परनिरपेक्षत्वात्संसृष्टिः।

यहाँ इन्दुमुखी यह उपमा है, तिलोत्तमा के गुण को धारण किये हुए, यह निदर्शना है, उत्तरार्द्ध में असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति है, ये सभी अलङ्कार परस्पर निरपेक्ष रूप से स्थित हैं, अतः संसृष्टि है।

अलङ्कारस्यालङ्कारान्तरसापेक्षत्वेऽङ्गाङ्गिभावः सङ्करः ॥ ११२ ॥

एक अलङ्कार अन्य अलङ्कार की अपेक्षा करके यदि अवस्थित रहता है तो अङ्गाङ्गिभाव रूप सङ्कर अलङ्कार रहता है ॥ ११२ ॥

यथा—केशकलापः प्रकरं समुद्गिरन् कुन्दमुकुलानाम्।
प्रियपरिरम्भानन्दाद्भातितरां वाष्पविप्रुष इवोज्झन् ॥

कुन्द कलियों के समूह को उगलता हुआ केश समूह वाष्प विन्दु का त्याग करता हुआ प्रिय के आलिङ्गनजनित आनन्द से अतिशय शोभायमान हो रहा है ॥

अत्र तृतीयचरणोक्तकाव्यलिङ्गमुपजीव्य कुन्दमुकुलेषु वाष्पवर्षविन्दूत्प्रेक्षासिद्धिः।

यहाँ तृतीय चरण में उक्त काव्यलिङ्ग को उपजीव्य कर कुन्दमुकुलों में वाष्पविन्दु की उत्प्रेक्षा है, अतः परस्पर अङ्गाङ्गिभाव रहने से उत्प्रेक्षा है।

साधकवाधकप्रमाणाभावादन्यतरालङ्कारनिर्णयाभावे सन्देहरूपः सङ्करो द्वितीयः ॥ ११३ ॥

साधक वाधक प्रमाणों के अभाव से किसी एक अलङ्कार के निर्णय न होने से सन्देह रूप सङ्करालङ्कार होता है ॥ ११३ ॥

यथा—भ्राम्यन्तीभिरनन्तरं मधुकरश्रेणीभिरम्भोरुहं
रम्भोरुप्रणयात्प्रियेण(सहसा) हस्तेन संमार्ज्यते।
तत्सम्बन्धभृतां परस्परविभागाय प्रयासस्पृशां
पत्राणामवलोकनेन विगतप्राया निशा ज्ञायताम् ॥

कमल पर घूमते हुए भ्रमर समूह अनन्तर कंदली के समान जङ्घा वाली प्रियतमाके के प्रेम से सहसा हाथ से हटाता है, उसके सम्बन्ध को धारण करने वाले स्पर्श के लिये प्रयत्नशील पत्रों के परस्पर अलग करने के प्रयास में ही सम्पूर्ण निशा व्यतीत हुई—ऐसा प्रतीत होता है।

अत्र किं मानत्यागो विधीयतामित्यर्थस्य रात्रिर्गतेतिभङ्ग्यन्तरेणाभिधानात्पर्यायोक्तम्, किंवा मधुकराम्भोरुहपदाभ्यामलकमुखप्रतीतेरतिशयोक्तिः,

किं वाऽप्रस्तुतेन कमलमार्जनेन प्रस्तुतस्य मुखमार्जनस्यावगमात्प्रस्तुताङ्कुर इति सन्देहः।

प्रकृत में मान का त्याग करो इस अर्थ का रात्रि व्यतीत हुई इसका भङ्ग्यन्तर से अभिधान करने से पर्यायोक्त अलङ्कार है, या मधुकर और अम्भोरुह इन दो पदों से केश और मुख की प्रतीति से अतिशयोक्ति है, या अप्रस्तुत कमल मार्जन से प्रस्तुत मुख मार्जन की अवगति से प्रस्तुताङ्कुर है—यह सन्देह है ॥

शब्दार्थालङ्करणयोरेकपदवृत्तित्वं तृतीयः सङ्करः ॥ ११४ ॥

शब्दार्थ और अलङ्करण की एक पदवृत्तिता होने से तृतीय सङ्कर अलङ्कार होता है ॥ ११४ ॥

यथा—सविलासमावलितलोलतारका नवयौवनोदयविकारघूर्णिताः।
हृदयं न कस्य मदयन्ति भङ्गयो घनसारसारसदृशां दृशां तव ॥

जैसे :—पारद सदृश तुम्हारे विलास पूर्वक कुटिल चञ्चल तार का नवीन यौवन के उदय रूपी विकार मस्त नेत्रों की भङ्गिमा किसके हृदय को मदपूर्ण नहीं करती है, अर्थात् सभी को मदमस्त करती है ॥

अत्र चतुर्थचरणे उपमानुप्रासौ। वर्णसाम्यमनुप्रासः।

रसस्य पराङ्गत्वे रसवदलङ्कारः ॥ ११५ ॥

यहाँ चतुर्थ चरण में उपमा और अनुप्रास है, वर्ण साम्य को अनुप्रास कहते हैं। रस यदि दूसरे का अङ्ग रहता है तो रसवद् अलङ्कार रहता है ॥ ११५ ॥

यथा—प्रत्येकावयवसमूहसन्निवेशो माधुर्ये वयसि विभूषणे विलासे।
शोभायामपि तव तन्वि ! यन्निदानं जानीमस्तदितरदन्यजन्यहेतोः ॥[1]

जैसे :—हे कृशाङ्गि ! तुम्हारे प्रत्येक अवयव समूह के सन्निवेश, माधुर्य, अवस्था विभूषण, विलास और शोभा में जो कारण जानते हैं वह अवयव सन्निवेश आदि से भिन्न कार्य का जो साधन है उससे भिन्न है अर्थात् अलौकिक है।

अत्राद्भुतरसः शृङ्गारस्याङ्गम्।

यहाँ अद्भुत रस शृङ्गार का अङ्ग है।

भावस्य पराङ्गत्वे प्रेयोनामालङ्कारः ॥ ११६ ॥

भाव यदि किसी अन्य का अङ्ग होता है तो वहाँ प्रेयः अलङ्कार होता है ॥ ११६ ॥

यथा—उन्नीताः प्रगुणा गुणाश्चरणयोः प्रस्वीकृतो वल्लभो
विध्वस्तश्च विपक्षयौवनमदः सौभाग्यमुन्नावितम्।

---

१. अन्यजन्यहेतोः = अन्यम् अवयवसन्निवेशादेर्भिन्नं यत् जन्यं कार्यं तस्य यो हेतुः कारणं तस्मात्, इतरत् = भिन्नम् अलौकिकमितियावत्।

अस्मिन्याति कुहूरुतां कुहुरुतैः काले सकोलाहले
निर्बन्धादनिबन्धनाद्विरम तद्दीर्घानुबन्धादितः ॥

जैसे :—दक्षता रूपी गुण वृद्धि प्राप्त है चरण पर प्रिय प्रणत है, विपक्ष यौवन मद विध्वस्त है, सौभाग्य उद्भावित है, कोकिलों के शब्दों से कोलाहल पूर्ण इस समय में उस दीर्घ अनुबन्ध रूपी निर्बन्ध के निबन्धन से यहाँ विरत हो।

अत्र सखीनिष्ठनायिकाविषयकभावः शृङ्गारस्याङ्गम् ।

यहाँ सखी निष्ठ नायिका विषयक भाव शृङ्गार का अङ्ग है ।।

रसाभासभावाभासयोः पराङ्गत्वे ऊर्ज्जस्वी ॥ ११७ ॥

रसाभास और भावाभास की अन्य की अङ्गता रहने पर ऊर्ज्जस्वी अलंकार होता है ।। ११७ ।।

यथा—भजत्याविर्भावं मलिनिमनि सीमासु हरितां
गुलुच्छावस्थानं कुवलयकलापे कलयति ।
मनः केलीकुञ्जे नयनमिदमीयेऽध्वनि तनु-
र्गृहाचारे सज्जत्यभिसृतिपटूनां विधुमुखि ! ॥

हे चन्द्रमुखि ! मलिनिमा सीमा में हरित् वर्ण का आविर्भाव होता है, कुवलय कलाप में स्तवक की अवस्थिति होती है, इसके लिए कुञ्ज घर के मार्ग में नयन मन और शरीर अभिसरण पटु का आकृष्ट होता है ।।

अत्राभिसारिकानिष्ठरसाभासो नायकनिष्ठशृङ्गारस्य ।

प्रकृत में अभिसारिका निष्ठ रसाभास नायक निष्ठ शृङ्गार का अङ्ग है ।

दूति ! त्वं कृतिनी मम प्रियतमप्रेक्षोत्सवानन्दभू-
र्विश्रम्भादित आशु भास्वति तपत्यास्वादयन्त्यातपम् ।
स्वेदस्य व्यजनानिलैरवयवालस्यस्य संवाहनैः
साकूतं करपल्लवेन रजसां कुर्यां तवापक्रियाम् ॥

हे दूति ! तुम सफल हो मेरे प्रियतम के प्रेक्षणोत्सव की आनन्द भूमि हो, विश्वास पूर्वक सूर्य के तप्त होने पर भी ताप का आस्वादन करती हुई, सव्याज स्वेद का व्यजन वायु से अवयवालस्य के संवाहन से करकमल से तुम्हारी धूलियों का अपसारण करें ।

अत्र नायकं सम्भुज्यागतायां वैरिण्यां दूत्यां नायिकारतिर्भावाभासरूपा नायिकानिष्ठनायकविषयशृङ्गारस्य ।

प्रकृत में नायक से आलिङ्गित वैरिणी दूती के प्रतिनायिका रति भावाभास-रूप नायिका निष्ठ नायक विषयक शृङ्गार का अङ्ग है ।

भावशान्तेः पराङ्गत्वे समाहितम् ॥ ११८ ॥

भाव शान्ति के दूसरे के अङ्ग की स्थिति में समाहित अलङ्कार होता है ॥११८॥

यथा—स्मारं स्मारमतिक्रमान् प्रणयिनः कृत्वाऽऽलिभिः सम्मतिं
यो मध्येहृदयं कुशेशयदृशां संवासितो वासरम्।
विश्लेषाकुलचक्रवाततरुणीकूजासमाकर्णनैः
सायं कुण्डलनेव तस्य विहिता मानस्य हारच्छलात्॥[1]

जैसे :—प्रणयी अतिक्रमण का स्मरण करती हुई भ्रमरों की समाप्ति मानकर जिसने कमलनेत्रा के हृदय के मध्य में दिवस पर भलीभाँति वास किया, वियोग से आकुल चक्रवाक युवती की ध्वनि को सुनने से हार के व्याज से सायं उसके वैयर्थ्य सूचिका रेखा की वेष्टना का विधान किया।

अत्र क्रोधशान्तिः शृङ्गारस्य।

प्रकृत में क्रोध शान्ति शृङ्गार का अङ्ग है।

भावोदयभावसन्धिभावशबलत्वानां पराङ्गत्वे तन्नामान एव त्रयोऽलङ्काराः शास्त्रकारैः संज्ञान्तरानुक्तेः ॥ ११९ ॥

भावोदय भाव-सन्धि भाव-शबलत्व की दूसरे की अङ्गता की स्थिति भावोदय, भाव-सन्धि और भाव-शबलता नामक तीन अलङ्कार होते हैं; क्योंकि शास्त्रकारों ने अन्य संज्ञा नहीं कही है ॥ ११९ ॥

यथा—प्रियश्रोत्रोपान्तात्किशलयमशोकस्य कुतुक-
ग्रहाद्यज्जग्राह प्रथममनुरागाङ्कुरमिव।
तदेव प्रोन्मीलन्नवरदपदं गण्डफलकं
विलोक्य व्यत्याक्षीन्मदनदहनाजिह्मगमिव॥[2]

जैसे :—प्रिय के कर्ण के समीप से प्रथम अनुरागाङ्कुर के समान अशोक के किशलय को क्रीडावश जो उसने ग्रहण किया, विकसित नवीन रदपद गण्डफलक को देखकर शिव ने सर्प के समान त्याग किया।

अथ क्रोधोदयः पराङ्गम्।

प्रकृत में क्रोधोदय अन्य का अङ्ग है।

[3]इच्छन्त्या हृदयप्रियं प्रियसखीसम्प्रेरणात्प्रस्थितिं-
मन्दाक्षातिशयात्ततो विमुखतामासादयन्त्या पुनः॥
उत्कम्पो हृदि चम्पकीयमुकुलोत्तंसः प्रतिच्छायया
भात्यात्मेव चिरादनिर्णयवशादोलायमानो मुहुः॥

---

१. कुण्डलना=वैयर्थ्यसूचिका रेखावेष्टना।

२. मदनदहनेति शिवसम्बोधनम्। अजिह्मगः सर्प इत्यर्थः।

३. अत्र हृदयप्रियमिति प्रतिशब्दाध्याहारेणोपपादनीयम्। हृदयप्रियं प्रति सखी—इति पाठो वा बोध्यः।

हृदय प्रिय के प्रति सखी की प्रेरणा से सम्प्रस्थान इच्छा करती हुई अतिशय लज्जा से पुनः विमुखता को प्राप्त करती हुई हृदय में चम्पकीय कलियों के कर्णाभूषण, प्रतिविम्ब से उच्च कम्पन, चिरकाल तक अनिर्णय से आत्मा के समान पुनः दोलायमान दिखाई पड़ता है।

औत्सुक्यलज्जयोः सन्धिः पराङ्गम्।

औत्सुक्य और लज्जा की सन्धि दूसरे का अङ्ग है।

लावण्यं त्रिजगद्विलक्षणमिदं चेतस्त्वमेधि स्थिरं
संवादि स्पृहया विधेर्विलसितं दौर्जन्यमन्यादृशम्।
[1]स्यामस्यानयनत्रिभागविषयो नन्वेतदेवाधिकं
दुर्बोधाः परबुद्धयो भगवते पुष्पायुधायोन्नमः॥

तीनों जगत् से विलक्षण यह लावण्य स्थिर रूप में चित्त में बढ़े विधि का विलसित हृदय से संवदनशील है, अन्य प्रकार का ही दौर्जन्य है यही वहुत वड़ी वात है कि इसके अर्थात् पार्वती के कटाक्षगोचर मैं होऊँ, दूसरे की बुद्धि दुर्बोध है, भगवान् पुष्पायुध = काम को सादर नमस्कार है।

अत्र विस्मयमतिहर्षशङ्कौत्सुक्यधृतिदैन्यासूयानां
शबलत्वं गौरीविषयकशिवनिष्ठशृङ्गारस्याङ्गमिति शिवम्।

प्रकृत में अति हर्ष शङ्का औत्सुक्य धृति दैन्य असूया का विस्मय अङ्ग है।
शबलत्व गौरी विषयक शिव निष्ठ शृङ्गार का अङ्ग है।

पुरातनामप्यधुनातनांश्च महानिबन्धानवधार्य सम्यक्
अयं कृतोऽलङ्करणप्रदीपो विद्वत्स्यमानैर्बहुमाननीयः॥

पुरातन और आधुनिक महानिबन्धों को भलीभाँति अवधारण कर यह अलंकरण प्रदीप विद्वानों से अतिशय मानवीय है।

श्रीमन्महीमहिततत्तदसीमधीमन्मूर्द्धन्यताकलनसङ्गतधन्यताकः।
लक्ष्मीधरो यमुदसूत मुदं प्रसूतां विश्वेश्वरस्य कृतिरस्य चिरस्य लोके॥

इति पण्डितवरविश्वेश्वरकृतोऽलङ्कारप्रदीपः समाप्तः॥



श्रीमान् पृथिवी पर पूर्णतः असीम बुद्धि सम्पन्न की मूर्द्धन्यता आकलन से धन्य लक्ष्मीधर ने जिसे जन्म दिया उस विश्वेश्वर की यह कृति वहुकाल तक आनन्द उत्पन्न करे।

इति पण्डितश्रेष्ठ विश्वेश्वरकृत अलङ्कारप्रदीप का अनुवाद समाप्त हुआ।



---

१. अस्या नयनत्रिभागविषयः स्याम् इत्यन्वयः। पार्वत्याः कटाक्षगोचरो भवेयम् इत्यर्थः।

अलङ्कारसूत्राणि

चमत्कारप्रयोजकं सादृश्यवर्णनमुपमा ॥ १ ॥

एकस्मिन्नुपमेये बहूपमानसादृश्यं मालोपमा ।

पूर्वपूर्वोपमायामुपमेयस्योत्तरोत्तरोपमायामुपमानत्वेन कथनं रशनोपमा ।

आरोप्यस्यारोपविषयतादात्म्यापत्त्या प्रकृतोपयोगः परिणामः॥

सामान्येन निरूपितस्य विशेषेण निरूपणमुदाहरणम् ॥३॥

उपमानोपमेययोर्ज्ञायमानमैक्यमनन्वयः ॥ ४ ॥

सर्वथैवोपमाननिषेधोऽसमः ॥ ५ ॥

परस्परसादृश्यमुपमेयोपमा ॥ ६ ॥

प्रकृतेऽप्रकृततादात्म्यसम्भावनमुत्प्रेक्षा ॥ ७ ॥

सादृश्यनिबन्धनः प्रकृतसंशयः सन्देहः ॥ ८ ॥

संशयोत्तरमनिर्णये ऊहो वितर्कः ॥ ९ ॥

विरुद्धयोः पाक्षिकी प्राप्तिर्विकल्पः ॥ १० ॥

उपमेये उपमानतादात्म्यारोपो रूपकम् ॥ ११ ॥

सर्वेषामारोप्यारोपविषयाणां शब्दोपात्तत्वे समस्तवस्तुविषयम्

यत्र केचिदिच्छावहाः केचिदार्थास्तदेकदेशविवर्ति ।

एकस्मिन्नुपमेये बहूपमानतादात्म्यारोपो मालारूपकम् ।

आरोपान्तरसापेक्ष आरोपः परम्परितम् ।

प्रसिद्धक्रमाणामेकत्रोषनिबन्धनं रत्नावली ॥ १२ ॥

प्रकृतनिषेधविशिष्टस्तदन्यारोपोऽपह्नुतिः ॥ १३ ॥

स्वकीयतात्पर्य्यख्यापनेन परभ्रान्तिखण्डनं भ्रान्त्यपह्नुतिः ।

परकीयप्रमाखण्डनाय स्वतात्पर्यस्यान्यथाकरणं छेकापह्नुतिः ।

अप्रकृतनिषेधविशिष्टप्रकृतस्थापनं निश्चयः ॥ १४ ॥

शब्दैक्ये सत्यनेकार्थकथनं श्लेषः ॥ १५ ॥

प्रकृतवृत्तान्तेनाप्रकृतप्रतीतिः शमासोक्तिः ॥ १६ ॥

अन्वयानुपपत्त्या सादृश्यपर्यवसानं निदर्शना ॥ १७ ॥

क्रियया हेतुहेतुमद्भावप्रतीतिर्द्वितीया निदर्शना ।

प्रकृतमनुपन्यस्य तत्स्थानीयवाक्यार्थान्तरोपन्यासो ललितम् ॥

अप्रकृतवृत्तान्तेन प्रकृतप्रतीतिरप्रस्तुतप्रशंसा ॥ १९ ॥

प्रस्तुतवृत्तान्तेन प्रस्तुतप्रतीतिः प्रस्तुताङ्कुरः ॥ २० ॥

प्रस्तुताप्रस्तुतयोः सर्वथैवाभेदप्रतीतिरतिशयोक्तिः ॥२१॥

तस्यैवान्यत्वाभिधानं भेदकातिशयोक्तिः ।

असम्बन्धे सम्बन्धकल्पनं सम्बन्धातिशयोक्तिः ।

सम्बन्धेऽप्यसम्बन्धकथनं द्वितीयाऽसम्बन्धातिशयोक्तिः ।

कार्यकारणयोर्यौगपद्यमक्रमातिशयोक्तिः ।

हेतुप्रसक्तावेव कार्योत्पत्तिकथनं चपलातिशयोक्तिः ।

कारणात्प्रागेव कार्योत्पत्तिकथनमत्यन्तातिशयोक्तिः ।

केनचिदापादकेन कस्यचिदापादनं सम्भावनम् ॥ २२ ॥

कस्यचिदर्थस्य मिथ्यात्वसिद्धये मिथ्याभूतार्थान्तरोपन्यसनं मिथ्याध्यवसितिः ॥ २३ ॥

उत्कर्षानुपपादनेऽप्युत्कर्षहेतुत्वकथनं प्रौढोक्तिः ॥ २४ ॥

कार्यकारणयोरभेदाभिधानं हेतुः ॥ २५ ॥

हेतुहेतुमद्भाववर्णनं द्वितीयो हेतुः ।

एकस्यानेकसमवेतभिन्नभिन्नप्रकारकज्ञानविषयत्ववर्णनमुल्लेखः।

एकस्याप्येकवृत्त्यनेकप्रकारकज्ञानविषयत्ववर्णनमपर उल्लेखः।

साम्याभिप्रायके वाक्यद्वये एकधर्मोपादानं प्रतिवस्तूपमा २७

तत्रैव बिम्बप्रतिबिम्बभावेन भिन्नधर्मोपादानं दृष्टान्तः ॥२८॥

प्रकृताप्रकृतानामेकधर्मान्वयो दीपकम् ॥ २९ ॥

एककारकस्यानेकक्रियान्वयः कारकदीपकम् ।
रूपान्तरेण पूर्वोक्तस्य उत्तरत्रान्यरूपेणान्वयो मालादीपकम् ।
क्रियाया द्विरभिधानमावृत्तिः (त्तिदीपकम्) ॥ ३० ॥
प्रकृतानामप्रकृतानामेव वा एकधर्मान्वयस्तुल्ययोगिता॥३१॥
सपक्षविपक्षयोर्वृत्तिसामान्यमन्या तुल्ययोगिता ।
उपयानादुपमेयस्योत्कर्षवर्णनं व्यतिरेकः ॥ ३२ ॥
अभिधातुमिष्टस्यापि विशेषलाभार्थो निषेध आक्षेपः ॥३३॥
उपमेयेनोपमानवैयर्थ्योक्तिरन्य आक्षेपः ।
अर्थान्तरतात्पर्यको निषेधोऽपर आक्षेपः ।
निषेधफलको विधिराक्षेपान्तरम् ।
विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्विभावना ॥ ३४ ॥
हेतुसत्त्वेऽपि कार्यानुक्तिर्विशेषोक्तिः ॥ ३५ ॥
निर्देशक्रमेण पदार्थान्वयो यथासङ्ख्यम् ॥ ३६ ॥
सामान्यविशेषाभ्यां विशेषसामान्यसमर्थनमर्थान्तरन्यासः ३७
विशेषसमर्थकस्य सामान्यस्य विशेषान्तरेण समर्थनं विकस्वरः ॥
आपाताद्विरोधभानं विरोधाभासः ॥ ३९ ॥
रम्यस्वभाववर्णनं स्वभावोक्तिः ॥ ४० ॥
स्तुतिनिन्दातात्पर्यकनिन्दास्तुत्यभिधानं व्याजस्तुतिः ॥४१॥
अन्यनिन्दया अन्यनिन्दाभिव्यक्तिर्व्याजनिन्दा ॥ ४२ ॥
उभयोश्चमत्कार्येकधर्मान्वयः सहोक्तिः ॥ ४३ ॥
किञ्चिद्विना कस्यचिदप्राशस्त्यप्राशस्त्यान्यतराभिधानं विनोक्तिः ॥ ४४ ॥
नित्यसम्बन्धानामसम्बन्धवचनमन्या विनोक्तिः ।
किञ्चिद्दत्त्वा कस्यचिदुपादानं परिवृत्तिः ॥ ४५ ॥
भूतभाविविशेषप्रत्यक्षं भाविकम् ॥ ४६ ॥
हेतूक्तिः काव्यलिङ्गम् ॥ ४७ ॥

वाच्यस्यापि भङ्ग्यन्तरेणाभिधानं पर्यायोक्तम् ॥ ४८ ॥

व्याजेनेष्टसाधनं द्वितीयं पर्यायोक्तम् ।

आनुकूल्यपर्य्यवसायिप्रातिकूल्यमनुकूलम् ॥ ४९ ॥

वस्तुनोऽतिशयविशेषकथनमुदात्तम् ॥ ५० ॥

महतामङ्गत्वकथनं द्वितीयमुदात्तम ।

अद्भुतशौर्यादिवर्णनमत्युक्तिः ॥ ५१ ॥

एकहेतुत्वेऽपि हेत्वन्तरोक्तिः समुच्चयः ॥ ५२ ॥

गुणक्रियायौगपद्यमपरः समुच्चयः ।

एकस्यानेकत्रानेकस्यैकत्र वा क्रमेण वृत्तिः पर्य्यायद्वयम् ॥५३॥

व्याप्येन व्यापकज्ञानमनुमानम् ॥ ५४ ॥

चमत्कारिसाक्षात्कारः प्रत्यक्षम् ॥ ५५ ॥

अतिदेशवाक्यार्थजन्यं ज्ञानमुपमितिः ॥ ५६ ॥

आप्तवाक्यं शब्दः ॥ ५७ ॥

उपपाद्येनोपपादककल्पनमर्थापत्तिः ॥ ५८ ॥

प्रतियोगिभिन्नायां प्रतियोगिप्रत्यक्षसामग्र्यां सत्यां प्रतियोगिनोऽप्रत्यक्षमनुपलब्धिः ॥ ५९ ॥

सम्भवः ॥ ६० ॥

अदृष्टवक्तृकः प्रवाद एवैतिह्यम् ॥ ६१ ॥

साभिप्रायविशेषणत्वं परिकरः ॥ ६२ ॥

विशेष्यस्य साभिप्रायकत्वं परिकराङ्कुरः ॥ ६३ ॥

रहस्यप्रकाशप्रतिबन्धकवाक्यं व्याजोक्तिः ॥ ६४ ॥

तादृशी क्रिया युक्तिः ॥ ६५ ॥

ज्ञातपररहस्यप्रकाशनं पिधानम् ॥ ६६ ॥

प्रतिभया ज्ञातस्यार्थस्यान्यानवगम्यप्रकारेण प्रकाशनं सूक्ष्मम्॥

अन्यतात्पर्य्येणान्यं प्रति कथनं(गूढो)गुच्छोक्तिः ॥ ६८ ॥

गुप्तार्थस्य कविना स्फुटीकरणं विवृतोक्तिः ॥ ६९ ॥

लोकप्रवादानुकारो लोकोक्तिः ॥ ७० ॥

अर्थान्तरगर्भा लोकोक्तिरेव छेकोक्तिः ॥ ७१ ॥

(एकेनान्याभिप्रायेणोक्तं वाक्यं यद्यन्येनान्याभिप्रायकं कल्प्यते तदा वक्रोक्तियोगाद्वक्रोक्तिः ॥ ७२ ॥)

नाम्नामवयवार्थान्तरकल्पनं निरुक्तिः ॥ ७३ ॥

अन्यार्थाभिप्रायो निषेधो निषेधः ॥ ७४ ॥

तादृशं विधानं विधिः ॥ ७५ ॥

कार्यस्य कुतश्चिदसम्भवाभिधानमसम्भवः ॥ ७६ ॥

इतरनिषेधफलकं वचनं परिसङ्ख्या ॥ ७७ ॥

उत्तरकारणोक्तिः कारणमाला ॥ ७८ ॥

परस्परोपकारकथनमन्योन्यम् ॥ ७९ ॥

उत्तरे एव प्रश्नोन्नयनमुत्तरम् ॥ ८० ॥

सति प्रश्नेऽसकृदपूर्वोत्तरकथनमप्युत्तरम् ।

वस्त्वन्तरगुणनिमित्तकः स्वगुणत्यागस्तद्गुणः ॥ ८१ ॥

तादृशः स्वगुणातिशयोऽनुगुणः ॥ ८२ ॥

पुनः स्वगुणप्राप्तिस्तादृश्येव पूर्वरूपम् ॥ ८३ ॥

अवस्थाभेदेऽपि पूर्वावस्थासाम्यमन्यत्पूर्वरूपकम् ।

अन्यगुणापसङ्क्रमोऽतद्गुणः ॥ ८४ ॥

गुणसाम्याद्भेदानवभासो मीलितम् ॥ ८५ ॥

हेत्वन्तरेण भेदप्रतीतिरुन्मीलितम् ॥ ८६ ॥

विजातीयव्यक्तितादात्म्यप्रत्ययः सामान्यम् ॥ ८७॥

हेत्वन्तरेण तत्प्रमा विशेषकम् ॥ ८८ ॥

कारणान्तरसमवधानात्कार्यसौकर्य्यं समाधिः ॥ ८९ ॥

इष्टादधिकलाभः प्रहर्षणम् ॥ ९० ॥

विरुद्धप्राप्तिर्विषादनम् ॥ ९१ ॥

आधाराधेययोरेव परस्पराधिक्यमधिकम् ॥ ९२ ॥

विरोधिपक्षापकारः प्रत्यनीकम् ॥ ९३ ॥

सूक्ष्मादप्याधारादाधेयस्य सूक्ष्मत्वकथनमल्पम् ॥ ९४ ॥

पूर्वपूर्वविशेषणानामुत्तरोत्तरं विशेष्यत्वोक्तिरेकावली ॥९५॥

चमत्कारिस्मृतिः स्मरणम् ॥ ९६ ॥

रम्यभ्रमो भ्रान्तिमान् ॥ ९७ ॥

उपमानतिरस्कारः प्रतीपम् ॥ ९८ ॥

आधारं विनापि वृत्तिर्विशेषः ॥ ९९ ॥

एकस्य युगपदनेकत्र वृत्तिरपरो विशेषः ।

एककार्य्येणानेककार्य्यसिद्धिरन्यो विशेषः ।

उत्तरोत्तरोत्कर्षः सारः ॥ १०० ॥

कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वमसङ्गतिः ॥ १०१ ॥

अन्यत्र चिकीर्षितस्यान्यत्र करणमपराऽसङ्गतिः ।

कार्यान्तरप्रक्रुतस्य तद्विरुद्धकार्यकरणमन्यासङ्गतिः ।

दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनं लेशः ॥ १०२ ॥

अन्यगुणदोषाभ्यामन्यदोषगुणकथनमुल्लासः ॥ १०३ ॥

अन्यगुणदोषयोरप्रयोजकत्वकथनमवज्ञा ॥ १०४ ॥

गुणविशेषानुषङ्गाद्दोषस्य प्रार्थनमनुज्ञा ॥ १०५ ॥

सम्बन्धानुरूप्यं समः ॥ १०६ ॥

अयोग्यसम्बन्धो विषमः ॥ १०७ ॥

इष्टप्राप्त्यभावविशिष्टानिष्टप्राप्तिरपरो विषमः ।

कार्यकारणयोर्गुणक्रियान्यतरविरोधेऽन्यो विषमः ।

उपादेयस्यापि कुतश्चिद्दोषात्तिरस्कारः… ॥ १०८ ॥

कार्यान्तरहेतोस्तद्विरुद्धकार्ये जनकत्वं व्याघातः ॥ १०९ ॥

इष्टार्थविरुद्धे प्रयत्नो विचित्रम् ॥ ११० ॥

परस्परमनपेक्षमाणानामलङ्काराणामेकवाक्यवृत्तित्वं संसृष्टिः ॥

अलङ्कारस्यालङ्कारान्तरसापेक्षत्वेऽङ्गाङ्गिभावः सङ्करः ॥ ११२ ॥

साधकबाधकप्रामाणाभावादन्यतरालङ्कारनिणर्याभावे सन्देह-रूपः सङ्करो द्वितीयः ॥ ११३ ॥

शब्दार्थालङ्करणयोरेकपदवृत्तित्वं तृतीयः सङ्करः ॥ ११४ ॥

रसस्य पराङ्गत्वे रसवदलङ्कारः ॥ ११५ ॥

भावस्य पराङ्गत्वे प्रेयोनामालङ्कारः ॥ ११६ ॥

रसाभासभावाभासयोः पराङ्गत्वे ऊर्ज्जस्वी ॥ ११७ ॥

भावशान्तेः पराङ्गत्वे समाहितम् ॥ ११८ ॥

भावोदयभावसन्धिभावशबलत्वानां पराङ्गत्वे तन्नामान एव त्रयोऽलङ्काराः शास्त्रकारैः संज्ञान्तरानुक्तेः ॥ ११९ ॥



अलङ्कारप्रदीपस्थोदाहरण पद्यानामकारादि-क्रमेणानुक्रमणिका

अलङ्कारप्रदीपस्थालङ्काराणामकारादिक्रमेण सूची

